ISSN – 2349-3100 Peer Reviewed

Vol.III,NOV – 2014 Refereed Journal

अन्ताराष्ट्रिय-मूल्यांकित-त्रैमासिक-सन्दर्भित-शोधपत्रिका

वेदज्योतिष्मती

Vedajyotishmati

संरक्षकाः

प्रो. रामचन्द्रझाः, प्रो. रामदेवझाः,

प्रो. देवेन्द्रमिश्रः, प्रो. शिवाकान्तझाः

प्रधानसम्पादकः

प्रो. हंसधरझाः

आचार्यः, ज्योतिषविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

भोपालपरिसरः।

सम्पादकः

डॉ. आशीषकुमारचौधरी

असिस्टेंट-प्रोफेसर, ज्योतिषविभागः,

क.जे.सोमैया संस्कृतविद्यापीठम्, मुम्बई।

प्रकाशकः

राष्ट्रिय-संस्कृत-अनुसंधान-संस्थानम्, के. एम. टैंक लहेरियासरायः, दरभंगा

सम्पादकमण्डल

1 प्रो .बोधकुमार झा,
आचार्य, व्याकरण-विभाग,
क. जे. सोमैया-संस्कृतविद्यापीठ, मुम्बई ।

2 प्रो. हंसधर झा,
ज्योतिष विभाग ,आचार्य,
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान , भोपाल परिसर, भोपाल।

3 प्रो. प्रमोदवर्धन कौण्डिल्यायन,
विभागाध्यक्ष, मीमांसा दर्शन विभाग नेपाल,
नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, काठमाण्डु, नेपाल ।

4 जूही जेनोजे,
आचार्या,दर्शन विभाग,
कोरिया विश्वविद्यालय, सीओल, कोरिया ।

5 डॉ. प्रवेश सक्सेना,
पूर्व आचार्या,संस्कृत विभाग,
जाँकिर हुसैन महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय।

6 डॉ. धनञ्जय मणि त्रिपाठी,
आचार्य ,संस्कृत विभाग,
मोदी विश्वविद्यालय, राजस्थान ।

7 डॉ. दिलीपकुमार झा,
विभागाध्यक्ष-धर्मशास्त्र विभाग
कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा ।

8 डॉ. राजीव मिश्र,
प्राचार्य, सन्तनागपाल संस्कृतमहाविद्यालय,
एवं शोध संस्थान, सम्पूर्णानन्द संस्कृत
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

9 टेल्टो डेल्टेज,
आचार्य दर्शन एवं संस्कृति विभाग,
हेल्डमार्ग विश्वविद्यालय,हेल्डनवर्ग, जर्मनी।

10 प्रो. विद्यानन्द झा,
साहित्यविभागाध्यक्ष,
भोपाल परिसर, भोपाल।

पुनर्वीक्षणमण्डल

1. आचार्य रामदेव झा,
पूर्व आचार्य ज्योतिष विभाग,
लालबहादुर शास्त्री, राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली ।

2. आचार्य नीलाम्बर चौधरी,
आचार्य रामभगत राजीवगाँधी महाविद्यालय दरभंगा ।

3 आचार्या प्रवेश सक्सेना,
आचार्या ,जाँकिर हुसैन महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली।

प्रबंधक संपादक

1. श्री पंकज ठाकुर एवं अध्यक्ष
रा.सं.अनु. संस्थान, दरभंगा।

सलाहकार संपादक

1. डॉ. रंजय कुमार सिंह
रा. सं. संस्थान, मुम्बई ।

सह –संपादिका एवं सह –संपादक

1 **डॉ गीता दूबे** , रा. सं. संस्थान, मुम्बई ।
2. **डॉ मनीष कुमार चौधरी** ,अध्या.सं.दरभंगा ।
संगणक सहायक -नितीश भारद्वाज ।

@copy right – Rashtriya Sanskrit Anusandan Sansthan

Email – rsas.kothram@gmail.com, vjvv.rs@gmail.com,
Ph No. 06272-224671, 09619269812, 07506137027 अंक – नवम्बर 2014

पत्रिका में प्रकाशित लेखों से प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। विवाद का समाधान दरभंगा न्यायालय से ही स्वीकार्य है। लेखों को परिवर्तित, स्वीकृत एवं अस्वीकृत करने का पूरा अधिकार प्रकाशक को होगा ।A trilingual Educational Sanskrit Research Journal Published by the Rashtriya Sanskrit Anusandhan Sansthan, Darbhanga

डा. नारायणन्. ई. आर.

विभागाध्यक्षः, साहित्यम्,

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्(मा.वि.)

क . जे. सोमैयासंस्कृतविद्यापीठम्,

विद्याविहारः, मुम्बापुरी-400077।

DR. NARAYA NAN. E. R

HEAD, DEPT. OF SAHITYA

RASHTRIYA SANSKRI SANSTHAN

K. J. SOMAIYA SANSKRIT VIDYAPEETHAM

VIDYAVIHAR, MUMBAI-400077

शुभाशंसनम्

लोकवेदाभ्यामेव संस्कृतरूपा सरस्वती सहृदयहृदयं प्रविष्टा सकलविद्वन्मनोविलासिनी विजयतेतमामिति समेषां विदितप्रायैव। इयं च परावाग्रूपा तदुपासकानाशीर्वदन्ती चिरायाकासते। मोमुद्यमानमस्मन्मनो यद्वेदज्योतिष्मती ज्ञानज्योतिष्मती शोधपत्रिका त्रिपथगेव तृतीयं मार्गमुपगत्वरीव तृतीयाङ्कस्वरूपाऽचिरेणैवानुस्यूतमभि-प्रकाशयिष्यमाणेति। ज्योतिष्मतीति स्वयं प्रकाशस्वरूपा विशिष्य च ज्योति-श्शास्त्रस्यास्मिन् जगति प्राधान्यमुद्बोधयन्ती नितरां श्लाघनीया पत्रिकेति नास्त्यत्र सन्देहलवः। पत्रिकामिमां विदुषां विशिष्य सहृदयानां वेदविदां कालज्ञानां मनस्सु चिरप्रतिष्ठां प्रापयितुमिव समुचितसरस्वतीसमुपासनैकरतेन ज्योतिश्शास्त्रविदाऽपि चास्मन्मित्रोत्तमेन यूना डाक्टरबिरुदभाजा पण्डिताशीषकुमारचतुर्धुरीणेनाश्रान्त-परिश्रमपुरस्सरं लोकसमक्षं नीतेति मे प्रतिभात्येव। सेयमुत्तरोत्तरं संस्कृतजगति चिरप्रतिष्ठामियादित्येव हृदयपुरस्सरं कामयामहे।

Narayanan

डा. नारायणन् .ई. आर.

सम्पादकीयम्

वेदो हि ज्ञानमूलम्। मनु-गौतम-याज्ञवल्क्य-पराशरादिभिर्महर्षिभिराम्नायेषु निहितान् गूढार्थान् प्रकाशयितुं स्मृत्यादीनि शास्त्राणि रचितानि। एवं च काले काले विद्वांसो मनीषिणो ग्रन्थ-पत्रिकादिमाध्यमेन निजान्तर्ज्ञानप्रकाशमपि विकिरन्ति लोक इत्यपि नाविदितं विज्ञैः। तस्मिन्नेव क्रमे प्राचां ज्ञानविज्ञानमयशोधपूर्णलेखैर्भासमाना अग्रेसरन्ती गताङ्कद्वारा प्रतिष्ठां लभमाना वेदज्योतिष्मती तृतीयाङ्कं प्रविष्टेत्यमन्दानन्दस्थानम्।

वस्तुतश्शोधपत्रिकाः खल्वनुसन्धातृणां कृते भवन्त्यनुसन्धानकर्मणि सहायिकाः। शोधपत्रिकया ननु वर्धते चिन्तकानां लेखकानां लेखनगतिः। शैक्षणिकगतिविधौ शोधपत्रिकायाः प्रकाशनं भवति नितरामुपयोगीत्यत्र न सन्देहः। अत आशासे भारतीयप्राचीनज्ञानविज्ञानं द्योतयन्त्याः संस्कृतहिन्द्याङ्ग्लेतिभाषात्रयोपनिबद्धायास्त्रिवेणीरूपायास्त्रैमासिक-सान्दर्भिक-शोधपत्रिकाया वेदज्योतिष्मत्यास्तृतीयोऽयमङ्कोऽपि विद्वज्जनलाभाय स्यात्।

अथ च पत्रिकाया अस्यास्तृतीयाङ्कस्य प्रकाशने ये विद्वांसो लेखकाः सम्पादकाः प्रकाशनविभागीयाधिकारिणो मुद्रकाश्च सन्ति, तेभ्यः सर्वेभ्योऽपि धन्यवादं समर्प्य निवेदयामि च पुनस्तान् यदेवमेव तेऽग्रेऽपि पत्रिकाप्रकाशने सहयोगाय प्रवर्तन्तामिति।

(प्रो. हंसधरझाः)
प्रधानसम्पादकः

विषयसूची पृष्ठसंख्या

❖ सम्पादकीयम्	प्रो.हंसधरझाः	4
❖ दार्शनिक स्तम्भ "जन्माद्यस्य यतः"(ब्रह्मसूत्र. 1/1/2)	प्रो .बोधकुमार झा	6
❖ माघकाव्ये साङ्ख्ययोगतत्त्वानामनुशीलनम्	डॉ जयप्रकाश नारायण	7
❖ ध्वनितत्त्वविमर्श:	डॉ.स्वर्गकुमारमिश्र:	12
❖ व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषामिति विचारः	मौनिका बोल्ला	16
❖ अभिक्रमिताधिगमः अष्टाङ्गयोगश्च	सत्यदेवः	19
❖ ज्योतिर्विज्ञान-भाग्य और पुरुषार्थ	आचार्य रामदेव झा	22
❖ उपनयन में कालविचार एवं गुरुशुद्धिविचार	प्रो.हंसधरझाः	24
❖ ज्योतिष के आधार पर चिकित्सा (रत्नों के द्वारा)	डॉ. श्रवण कुमार चौधरी	27
❖ वैदिक व्यावसायिक प्रबन्धन: कतिपय वैदिक मन्त्रों के सन्दर्भ में	डॉ. धनञ्जय मणि त्रिपाठी	32
❖ मनोविज्ञान का वैदिक चिन्तन	डॉ. राकेश कुमार जैन	36
❖ दिक् शोधन और शंकु	डॉ.राजीव कुमार मिश्र	41
❖ शक्तिपीठ – उग्रतारा महिषी का वास्तुशास्त्रीय स्वरूप	डॉ.आशीष कुमार चौधरी	43
❖ पाराशरी ज्योतिष में ग्रह दृष्टि-विचार	डॉ .प्रियंका जैन	46
❖ प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास	डॉ . रंजय कुमार सिंह	49
❖ वास्तुशास्त्र के अनुसार वृक्ष विचार	भरत गर्ग	52
❖ *Science of philosophy*	Tello Deltige	54
❖ ***ROLE OF EDUCATION IN THE DEVELOPMENT OF ENVIRONMENT WITH SPECIAL REFERENCE TO SANSKRIT LITERATURE.***	**Nrityendu Bikash Das**	57

दार्शनिक स्तम्भ

"जन्माद्यस्य यतः" (ब्रह्मसूत्र. 1/1/2)

✍प्रो .बोधकुमार झा

(शब्दार्थ – जन्मादि = उत्पत्ति , स्थिति और लय , अस्य = संसार का , यतः = जिस मूल कारण से , होता है, वही ब्रह्म है ।)

ब्रह्म के बारे में विचार करना चाहिये , ऐसा पहले बताया गया । अब सर्वप्रथम प्रश्न उठता है कि ब्रह्म कौन है ? इसके उत्तर में यह द्वितीय सूत्र है । सूत्र कहता है – जिस मूल कारण से संसार की उत्पत्ति होती है , स्थिति रहती है और लय हो जाता है , वही ब्रह्म है । यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि तीनों स्थितियाँ ब्रह्म से ही होतीं हैं और ब्रह्म में ही रहती हैं । इसे रस्सी में पानी की धारा के भ्रम से समझा जा सकता है । अंधेरा है । रास्ते में रस्सी पडी हुई है । कोई राही जब उसे देखता है , तो लगता है यहाँ पानी की धारा है । यहाँ पानी की धारा का मूल कारण रस्सी है । धारा का भ्रम रस्सी से ही उत्पन्न होता है , रस्सी में ही रहता है और सच्चाई का ज्ञान होने से धारा को रस्सी समझ लेने पर वह धारा रस्सी में ही लीन हो जाती है । इसी तरह मूल कारण ब्रह्म और संसार की अवस्था है । परन्तु उत्पत्ति आदि ब्रह्म से ही होती है , इसमें क्या प्रमाण है ? कोई और भी हो सकता है । ऐसा नहीं है । संसार के स्वरूप पर जब सूक्ष्म रूप से ध्यान देते हैं , तो यह पक्का पता चलता है कि इसका मूल कारण सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ब्रह्म ही है । संसार का कर्त्ता कोई अचेतन नहीं हो सकता , क्योंकि संसार नाम (शब्द) और रूप (अर्थ) इन दोनों में विभक्त है । कोई चेतन ही नाम को बुद्धि में रखकर रूप बना सकता है । किसी को बनाने से पहले उसे बुद्धि में संकल्पित किया जाता है और फिर उसको बनाते हैं । यह बुद्धि किसी चेतन में ही हो सकती है , अचेतन में नहीं । वह चेतन भी कोई अल्पज्ञ और अल्पशक्तिमान् नहीं हो सकता । संसार की बनावट ऐसी है कि उसे सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ही बना सकता है । यह संसार विचित्र है । काले हिरण हर जगह नहीं होते । कोयल की कूकू हर समय सुनायी नहीं देती । बगुले का गर्भ बादलों की ध्वनि से ठहरता है । कोई किसी कार्य में दक्ष होते हैं , तो कोई किसी में । कोई सुखी , कोई दुःखी , तो जो पहले सुखी हैं, वे कभी दुःखी हो जाते हैं । ये सब बातें स्वाभाविक रूप से या थोडी बुद्धि- शक्तिवाले कर्त्ता से सम्भव नहीं हैं । मानवशरीर ही हम लें, तो एक भी शरीर की रचना सर्वथा पूर्ण सम्भव नहीं है । अतः यह किसी सर्वज्ञ सर्वशक्तिसम्पन्न कारण से ही सम्भव है , वही कारण ब्रह्म है । अब बात उठती है प्रमाण की । तो ब्रह्म में दो प्रमाण हैं । एक अनुभव और दूसरा शब्द (वेद) । बिना कारण का कोई कार्य नहीं होता , ऐसा वैज्ञानिक अनुभव है । इस संसार रूपी कार्य का भी कोई कारण अवश्य है , जिससे और जिसमें उत्पत्ति , स्थिति और लय होता है । वही कारण ब्रह्म है । दूसरा – मुख्य रूप से तीन प्रमाण हैं – प्रत्यक्ष , अनुमान और शब्द । यहाँ शब्दप्रमाण का अर्थ वेद-प्रमाण से है । वेद कहता है - "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्मेति ।" (तैत्तरीयोपनिषद् 3/1) । इस ऋचा में 'जायन्ते' से जन्म , 'जीवन्ति' से जीवन या स्थिति , 'प्रयन्ति' से लय को स्पष्ट रूप से बताया गया है । तथा 'तद्ब्रह्म' शब्द से पूर्वोक्त तीनों कार्यो का मूल कारण ब्रह्म को कहा गया है ।

यह संसार विचित्र है । इसे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ही बना सकता है ।

आचार्य, व्याकरण-विभाग, क. जे. सोमैया-संस्कृतविद्यापीठ, मुम्बई।

माघकाव्ये साङ्ख्ययोगतत्त्वानामनुशीलनम्

✍डॉ जयप्रकाश नारायण

महाकविः माघः संस्कृतकाव्यजगतः देदीप्यमान नक्षत्ररूपेण अन्यतमोऽस्ति । तस्य शिशुपालवधमहाकाव्यं बृहत्त्रय्याः अद्वितीयं रत्नं वर्तते । अस्मिन् काव्ये महाकाव्यस्य सर्वाणि लक्षणानि प्राप्यन्ते । माघः स्वमहाकाव्ये पूर्ववर्तिनां सर्वेषां कवीनामुत्कृष्टगुणानां समन्वयमकरोत् । सः कालिदासात् काव्यसौन्दर्यं, भारवेरर्थगौरवं, दण्डिनः पदलालित्यं, भट्टेः च व्याकरणपाटवं संकलितवान् । इदं महाकाव्यं संस्कृतवाङ्मये सर्वेभ्यः परवर्तिभ्यः सर्वथा अनुकरणीयं विद्यते । अतएव महाकाव्यस्यास्य वैशिष्ट्यं समग्रसंस्कृतसाहित्ये प्रथितमेव । माघे सर्वशास्त्राणां परिनिष्ठज्ञानं परिलक्ष्यते । माघस्य पाण्डित्यमभिलक्ष्य एवोच्यते धनपालेन तिलकमञ्जर्याम् **माघेन विघ्नतोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे ।स्मरन्ति भारवेरेव कवयः कपयो यथा ।।**

काव्येषु माघः, "मेघे माघे गतं वयः", "माघे सन्ति त्रयो गुणाः" इत्यादयः सूक्तयः अपि माघविषये प्रसिद्धाः ।माघेन शिशुपालवधमहाकाव्ये महाभारतस्य सभापर्वणः शिशुपावधस्य लोकप्रिया कथा स्वीकृत्य स्वोक्तिवैचित्र्यपूर्णायाम् अलङ्कृतशैल्यां प्रस्तुता । शब्दार्थयोः मनोहरसामञ्जस्य सर्वत्र नवीनशब्दावल्याः, अभिनवपदशय्याप्रयोगस्य वा कारणेन शिशुपालवधमहाकाव्यस्यास्य स्थानं बृहत्त्रय्यां पञ्चमहाकाव्ये च महत्त्वपूर्णं विद्यते । वस्तुतः **माघकाव्यं** भाषाप्रौढतायाः दृष्ट्या वर्णनवैचित्र्येण, अलङ्कारप्रयोगदृष्ट्वा, छन्दोयोजनया दार्शनिकज्ञानेन भावरसपरिपाकदृष्ट्या च शास्त्रीयपाण्डित्यस्य सर्वतोमुखी प्रतिभायाश्च निदर्शनमस्ति । मूलतः माघः महाकविना सह दार्शनिकः वैयाकरणश्चासीत् । सः विविधविषमगुणगणैः समन्वितः आसीत् । अतएव अस्मिन् महाकाव्ये विविधविषयाणां ज्ञानं स्थाने स्थाने प्राप्यते । संक्षेपेण माघस्य सकलेषु शास्त्रेषु अद्भुतः प्रवेशः आसीत्।महाकवि माघः भारतीय दर्शनशास्त्रस्य निष्णातः विद्वान् आसीत् इति शिशुपालवधमहाकाव्यस्य अनुशीलनेन सुतरां ज्ञायते । मानवजीवनस्य दर्शनेन सह घनिष्ठः सम्बन्धः वर्तते । परमतत्त्वस्य सैद्धान्तिकं रूपं दर्शनशास्त्रेषु अवाप्यते । दुःखस्य आत्यन्तिकनाशः अथवा जन्ममरणबन्धनाभ्यां सर्वथा मुक्तिरेव सर्वेषां चरमलक्ष्यं भवति । कविभिः मानवजीवनोपयोगिसमस्तक्रियाकलापेषु या दार्शनिकधारणा विद्यते सा तत्रोपनिबध्यते । महाकवि माघः महाकाव्येऽस्मिन् प्रायशः सर्वाणि दर्शनानि तत्तद्प्रसङ्गेषु उपस्थापयति , तेन प्रकाश्यन्ते च विविधदार्शनिकतत्त्वानि ।भारतीय आस्तिक-षड्दर्शनेषु साङ्ख्ययोगदर्शनयोर्महत्त्वं विदितमेव विदुषाम् । अतः साङ्ख्ययोगसम्बद्धाः ये सन्दर्भाः माघकाव्ये निरूपितास्सन्ति ते अस्मिन् शोधपत्रे उपस्थाप्यन्ते ।साङ्ख्यस्य सम्बन्धः तत्त्वसंख्यया विद्यते । साङ्ख्यदर्शने पञ्चविंशतितत्त्वानि गण्यन्ते । संख्यायन्ते गणन्यन्ते येन तत् साङ्ख्यम्, अपि च प्रकृतिपुरुषात्यताख्यातिरूपोऽवबोधो सम्यक् ज्ञायते येन तत् साङ्ख्यम् । इत्थं साङ्ख्यस्य द्विधाऽकर्मः क्रियते संख्या ज्ञानश्च । तत्त्वज्ञानमिदं प्रकृतिपुरुषयोर्पाधिक्यज्ञानम् उत वा शरीर-आत्मनोः जडचेतनयोश्च भेदज्ञानमस्ति । सम्यक् ज्ञानमिदं साङ्ख्याधिकमान्योऽर्थः । तत्त्वान्येतानि सङ्केतयति महाकविमाघः शिशुपालवधमहाकाव्ये । तद्यथा - महर्षिनारदः भगवन्तं श्रीकृष्णं प्रति कथयति -**इति ब्रुवन्तं तमुवाच स व्रती न वाच्यमित्थं पुरुषोत्तम त्वया । त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः किमस्ति कार्यं गुरुयोगिनामपि ।।**

हे पुरुषोत्तम ! भवता एवं न वाच्यं यतो हि त्रिकालदर्शिनोयोगिनोऽपि समाधौ भवन्तमेव साक्षात्कुर्वन्ति । अतो भवद्दर्शनाद् ते मदागमनस्य नान्यत् किञ्चित् प्रयोजनं विद्यते । अत्र च टीकाकारः बल्लभदेवः कथयति यतो योगिभिः

सनकसनन्दनसनातनसनत्कुमारकपिलादिभिरपि त्वमेव साक्षात्करणीयः इति तदैव द्रढयति - उदीर्णरागप्रतिरोधकं - ---- इति ।यया कस्यचित् कुतश्चित् सङ्कटान्निर्गतस्य केनचित्कान्तारेण गतस्य सौभाग्यात् किञ्चिन्निबोधस्थान-प्राप्तिरभयाय कल्पते तथैव विषयाभिलाषप्रतिबन्धकैराक्रान्तम् अनभ्यस्तलेन जनैरतिदुर्गमं मोक्षपथं कामायमानः पुरुषस्त्वामेव प्रथममाप्नोति, ततश्च न स पुनरावर्तते । "सोऽहम् इत्यादि" -श्रुतेस्तत्प्राप्तिरेवमोक्षत्वादिति भावः । तस्मान्मुमुक्षणापि त्वमेव साक्षात्करणीय इति सिद्धम् । तमेव विदित्वाऽति मृत्युतेति "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" इति श्रुतेः, इति वेदान्तदर्शनाभिमतम् । **"भगवत्सायुज्यं हि मोक्षः । रागे हि सति कुतो मोक्षः मोक्षस्य पन्था मोक्षपथ"** इति बल्लभदेवः । इदानीं साङ्ख्यमतेन ईश्वरस्वरूपं विविच्यते । प्रकृतिविविक्तपुरुषसाक्षात्कारान्मोक्षप्राप्ति-र्जायते,स भवानेवास्ति ।यथा - **उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन । बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ।।**

अर्थात् मनः संयम्य योगिनोऽन्तर्दृष्ट्या वा कथञ्चिद् साक्षात् कुर्वन्ति, त्वं सर्वतः उदासीनः साङ्ख्यशास्त्रप्रतिपादिते-महदादिविकारेभ्यो भिन्नः सत्त्व-रजस्-तमस् त्रैगुण्यात्मनो मूलकारणात् प्रकृतेः पृथक् स्थितः पुरातनः पुरुषश्चासि इति ब्रह्मविदो जनास्त्वां विदन्ति । पद्येऽस्मिन् माघेन पुराविदः, उदासितारं बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः इत्यादयः शब्दाः प्रयुज्यन्ते । महाकविमाघस्याशमित्थं विवृणोति प्रशस्तटीकाकार मल्लिनाथः - पुराविदः, पूर्वज्ञा कपिलादयः इत्यनेनात्र पुराविद् शब्दः महर्षि कपिलादिभ्यः साङ्ख्यशास्त्रप्रणेतृभ्यः प्रयुक्तः । केन रूपेण त्वां गृहीतमित्याह - उदासितारमुदासीनम् । प्रकृतौ स्वार्थप्रवृत्तायमपि स्वयमप्राकृतत्वादस्पृष्टमित्यर्थः । तथ्यस्यास्य पुष्ट्यर्थं साङ्ख्यकारिकाग्रन्थस्येयं कारिका उपस्थाप्यते । यथा – 'तस्माच्च विपर्यात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य । **कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टुत्वमकर्तृभावश्च ।महदादि विकारेभ्या यः पृथक् प्रतिपादयति ।।**तत्र टीकाकारमल्लिनाथः कथयति - "विकारेभ्यो बहिः बहिर्विकारम् । महदादिभ्यः पृथग्भूतमित्यर्थः । किञ्च प्रकृतेस्त्रैगुणात्मनो मूलकारणात्पृथग् भिन्नम् । प्रकृतिः पञ्चभूतेषु प्रधाने मूलकारणे इति । पुराभवं पुराजनमनादिम् पुरुषं पुरुषपदवाच्यं विज्ञानधनं विदुर्विदन्ति । यथाहुः -**मूलप्रकृतिरविकृतिमहादाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ।।**

तस्मात्त्वमेव साक्षात्करणीय इति सुष्ठुवतमिति भावः । अत्र टीकाकारः बल्लभदेवः - इदानीं साङ्ख्यदर्शनेन भगवतो निष्क्रियत्वमाह-त्वां पुराविदः सनत्कुमारप्रभृतयश्चिरन्तनाः पुरातनं पुरुषं विदुः । कीदृशं पुरुषमुदासितारं निष्क्रियम् संख्या हि साक्षिमात्र पुरुषमेवाहुः । तथा विकारेभ्यो महदादिभ्यो बहिर्बाह्यम् त्रयोविंशति विकार विलक्षणमित्यर्थः । तथा प्रकृतेः - प्रधानात् पृथगन्यत् न त्वं प्रकृतिर्नापि विकृतिरित्यर्थः । तदुक्तम् - न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः इति । सत्त्वरजस्तमांस्यनुद्भुतपाठवानि स्वकार्यक्षमाणि प्रकृति शब्देनोच्यन्ते ।अत्र प्रकृतेः निर्विकारावस्था मूलप्रकृतिरिति । प्रकृतेः पृथग्विदुः अतएवास्ति यतः त्रिगुणात्मिकाप्रकृतिरेव जगतः कारणम् । यथा चोक्तं साङ्ख्यकारिकायाम् -**त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि ।व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान् ते ।।**उपर्युक्ते पद्ये महाकवि माघः साङ्ख्यकारिका तत्त्वानि निर्दिशति । अवतारवादानुसारं कृष्णं परमात्मरूपमिति बोधयन् अत्र तं साङ्ख्यपुरुषत्वेन सिद्धयति ।शिशुपालवधस्य द्वितीये सर्गे माघः प्रतिपादयति - पुरुषः (आत्मा) साक्षीमात्रे फलभाजि भवति, बुद्धिश्च सुखदुःखादीन् भुङ्क्ते । यथा -**विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम् ।फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोगं इवात्मनि ।।**पद्येऽस्मिन् बलरामः कृष्णं प्रति कथयति - अद्य यथा साङ्ख्योक्तफलभोक्ता साक्षिमात्रे आत्मनि बुद्धेः भोगः प्रयुज्यते तथैव सेनायाः कन्याः विजयः साक्षिमात्रे उदासीने एव फलभाजि त्वयि समीक्ष्योक्ते । अत्र शिशुपालवधस्य सन्देहविषोषधिव्याख्याकारः कथयतित्वं केवलं वीक्षस्व, यत्तु कर्तव्यं तदखिलं पृतनैव करोति विजयश्च लोके तवैव न तु सेनायाः, तत्फलं च त्वमेव सेवसे न तु चमूः ।

क्र यथा - समीक्षोक्ते साङ्ख्यशास्त्रनिर्दिष्टे - यथात्मनि साक्षिमात्रे बुद्धेः सम्बन्धी भोगानुभवः संसारापवर्गलक्षणोपदिश्यते । तत्र दर्शनम् - आत्मा दर्शयिता बुद्धिर्वेद्या, बुद्धिर्बध्यते मुच्यते न किञ्चिदुपभुङ्क्ते । **अथोच्यते बद्धः पुरुषो मुक्त आत्मनः सुखमात्मनो दुःखमिति** ।अत्र साङ्ख्योक्तकथनेन राजनीतिविषयकतत्त्वानां परिपोषणं जायते, तेन माघः साङ्ख्यदर्शनस्य ज्ञाता इति प्रमाणयति ।प्रकृति पुरुषर्योज्ञानेनेव मोक्षप्राप्तिः सम्भावनान्यथा तथ्यमिदं रैवतकपर्वतचित्रणप्रसङ्गेन प्रतिपादयति महाकवि माघः -**मैत्र्यादिचित्त परिकर्मविदो विधायक्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीज योगाः । ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य, वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो न रोद्धुम्** ।।अर्थात् प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकाभावत्वेन संसारे जीवस्य आवागमनं, विवेकग्रहणेन च मुक्तिरिति साङ्ख्यसिद्धान्तः । अत्र टीकाकारः मल्लिनाथः कथयति - सत्त्वपुरुषयोः भिन्नाविति ज्ञात्यर्थः । प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकाग्रहणात् संसारः । विवेकप्रहणान्तुक्तिरिति साङ्ख्याः । अथ तां ख्यातिमपि निवर्तयितुं वाञ्छन्ति वृत्तिरूपाम् । तां निवत्र्य स्वयं प्रकाशतयैव स्थातुमिच्छन्तीत्यर्थः । प्रकृतावुपरतायां पुरुषस्वरूपेणावस्थानं मुक्तिः इति साङ्ख्यसिद्धान्तः । **अनेन रैवतकपर्वतोऽयं न केवलं भोगभूमिः अपितु मोक्षक्षेत्रमपीति भावः** ।। सन्दर्भेऽस्मिन् बल्लभदेवः कथयति - प्रकृतिपुरुषयोर्भेदज्ञानं ख्यातिस्तदाहसत्त्वपुरुषान्यतयेति सत्वैः कनिष्ठा बुद्धिः सत्त्वं पुरुष आत्मा तयोरन्यतया भेदस्तया हेतुना ख्यातिरधिगम्यते तद्रूपत्वात्तस्याः । **न हि दृश्यद्रष्ट्रोर्भेदाग्रहणेख्यातिर्भवति तेन अन्या बुद्धिरन्यश्चात्मा इत्येवं प्रथममभ्यस्य पश्चात् पुरुषमेव निर्गुणं जिज्ञासन्ते इत्यर्थः ।** पद्येऽस्मिन् योगतत्त्वं यथा रैवतक पर्वते समाधिभृतो योगिनः ख्यातिं ज्ञानविशेषमधिगम्य अनन्तरं ताम् निवर्तयितुम् अभिलषन्ति । चेतसः एकाग्रयं समाधिः । स च योगाङ्गोपलक्षणम् - "यमनियमासनप्राणायाम-प्रत्याहारध्यानधारणासमाधीनष्टावपि हि ते बिभ्रति । **मैत्रीकरुणामुदितो उपेक्षति चतस्रश्चित्तवृत्तयः** । तत्र पुण्यकृत्सु मैत्री । दुःखिषु करुणा । सुखिषु मुदिता अनुमोदनम् । पापिषु उपेक्षा । कीदृशा समाधिभृत इति विशेषणद्वारेण ख्यातिप्राप्तामुपायमाह - (ख्यातिं ज्ञानमधिगम्य) मैत्र्यादयश्चित्तपरिकर्म चेतसः प्रसादनं तद्विदन्ति ये । मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणामभ्यासश्चेतः प्रसादनं चित्तपरिकर्म ।

रजोगुणस्य विकासवादप्रक्रियायां दधती विकसत्कुसुमारुणताम् ।
चिरमुज्झितापि तनु रौज्झदसौ न पितृप्रसूः प्रकृतिमात्मभुवः ।।

अत्र संध्याप्रादुर्भावचित्रेण साङ्ख्यतत्त्वमपि वर्णयति, यथा जनसमूहेन कृतप्रणामाः विकसत्कुसुमवदरुणतां दधती राजसप्रकृतिवाद पितृणां जनयित्री इयं संध्यारूपिणी ब्रह्मणः मूर्तिश्चिरं त्यक्ताऽपि स्व स्वभावं न विससर्ज ।तदुक्तं सर्गाय रक्तं रजसोपबृहितम् इति । सत्त्वगुणस्य स्वरूपं प्रकाशोऽस्ति तमोगुणस्य चान्धकारः । परमत्र उत्पाद्याशक्तिप्रदातृरजोगुण एव । यथा प्रवहमानं जलं स्वयं तु प्रवहत्येव तेन साकं तृणादीन्यपि प्रवाहयति, तथैव रजोगुणः स्वयं क्रियापरं भूत्वा अन्यगुणानपि क्रियापरं कारयति । रक्तवर्णोऽयम् । अत्र च कथयति मल्लिनाथः - पितृणां प्रसूः पितृप्रसः असावियं संध्यारूपिणी आत्मभुवो ब्रह्मणस्तनुमूर्तिश्चिरमुच्झिताऽपि प्रकृति स्वभावम् जगदवन्द्यत्वादिनिजधर्ममित्यर्थः । भूतपूर्वोऽपि महाजनपरिग्रहः फलतीति भावः । अत्र भविष्यपुराणस्य कथामुल्लिखति माघः -**पितामहः पितॄन् सृष्ट्वा मूर्तिं तामुपसर्जह ।सा प्रातः सायमागत्य संध्यारूपेण पूज्यते** ।। ।।शिशुपालवधस्य त्रयोदशसर्गे योगदर्शनस्य तत्त्वं द्रष्टव्यम् - **वशिनं क्षितेरयनया विवेश्वरं नियमो यमश्च नियतं यति यथा । विजयश्रिया वृत्तमिवार्कमारुतावनुसस्रतुस्तमथदस्रयोः सुतौ** ।।नियतमाचारनिष्ठं यतिं जितेन्द्रियम् । नियमः - शरीरातिरिक्तदेशकालादिसाधनापेक्षः सन्ध्योपासनजपादिः । वा - नियमोऽनुष्ठेयरूपः शौचादिः । यमो निषिद्धवर्जनमहिंसादिः। यमः - शरीरमात्रसाधनापेक्षोऽहिंसादिः । उक्तश्च पातञ्जलयोगसूत्रे -

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः । शौचसन्तोषस्वाध्यायायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः इति । पद्येऽस्मिन् नकुलसहदेवौ यमनियमाविव । देवपुरुषकाराविव । अर्कमारुताविव नकुलसहदेवौ तं हरिमनुचरेतुः इति वल्लभदेवः ।साङ्ख्यशास्त्रस्य विवेचनं माघस्य अधोलिखितपद्ये द्रष्टुं शक्नुमः चतुर्दशसर्गे -**तस्य साङ्ख्यपुरुषेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः ।कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद्वृत्तिभाजिकरणे यथान्विजि** ।।पद्येऽस्मिन् माघः साङ्ख्यशास्त्रमतमित्थं प्रतिपादयति - यद्यपि आत्मा स्वयं पुण्यपापकर्माणि न करोति किन्तु बुद्ध्या एव क्रियते परं तेषु वृत्तिभाजि सत्येव आत्मा एव पुण्यपापकर्माणि करोति इति मन्यते । यथा अत्र कार्यमकुर्वतोऽपि युधिष्ठरः तस्य कर्मफलवान् मनुते । स्वयं क्रियाभोगरहितोऽप्यात्मा बुद्धेः सन्निधानाद्रक्त स्फटिकवत्तथा भवतीत्यर्थः । अत्र टीकाकारः मल्लिनाथः निरूपयति यत् अत एव साङ्ख्यपुरुषेण साङ्ख्यशास्त्रेक्तेनात्मना तुल्यतां बिभ्रतस्तस्य राज्ञः अन्तःकरणे यथा । एवमेव बल्लभदेवोऽपि कथयति यत् - अतएव साङ्ख्यपुरुषेण समीक्षोक्तेनात्मना साम्यं बिभ्राणस्य । किलकरणे बुद्धौ सव्यापारे सुखदुःखोपभोक्तरि निष्क्रियस्यापि पुरुषस्य कर्तृत्त्वम् कुतः तासां बुद्धिकृतानां क्रियाणामुपलम्भाद् दर्शनात् प्रकृतिजनितानां हि क्रियाणां द्रष्टा साङ्ख्यपुरुष उदासीनः अतश्च बुद्धिबन्धमोक्षानुभवादात्मा बुद्धौ मुक्त इत्यभिधीयते ।अन्यदपि उदाहरणं साङ्ख्यतत्त्वस्य शिशुपालपधे द्रष्टुं शक्नुमः -

पद्मभूरिति सृजञ्जगद्रजः सत्त्वमच्युत इति स्थितिं नयन् ।
संहरन्हर इति श्रितस्तमस्त्रैधमेष भजति त्रिभिर्गुणैः ।।

एष हरिः रजोगुणमाश्रितो जगत्सृजन ब्रह्मेति, सत्त्वगुणं श्रितः जगत्स्थितिं स्थापयन् विष्णोरिति, तमोगुणंश्रितो जगत् संहरन् शिव (हर) इति, त्रिभिर्गुणैः सत्त्वरजस्तमोभिस्त्रैधं त्रैविध्यं भवति । अस्यैव गुणभिन्नास्तास्तिस्रोऽपि मर्तय इत्ययमेव सर्वोपास्य इति भावः । अतएव कादम्बर्यां बाणः मंगलपद्ये कथयति-**रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमः स्पृशे । अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ।।** योगदर्शनमाधृत्य कृष्णं पुंविशेषं सर्ववेदिनमिति प्रतिपादयति महाकवि माघः शिशुपालवधे - **सर्ववेदिनमनादिमास्थितं देहिनामनुजिघृक्षया वपुः । क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं पुंविशेषममीश्वरं विदुः ।।** अमुं कृष्णं सर्ववेदिनम् । अतएव अनादिमादिरहितम् । अनादिनिधनमिति तथापि प्राणिनामऽनुग्रहीतुमिच्छया मानुषविग्रहमास्थितम् । न तु कर्मारब्धशरीरभाजमित्यर्थः । अतएव क्लेशकर्मफलभोगवर्जितम् । क्लेशाः पञ्च अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाख्याः । कर्माणि शुभाशुभनि (पुण्यपापानि) तेषां फलं सुखदुःखे तयोभोगोऽनुभवस्तेन क्लेशैश्च वर्जितम् । तैरसंस्पृष्टमित्यर्थः । ईश्वरमीश्वरशब्दितं पुंविशेषं क्षेत्रजविलक्षणं पुंविशेषं परमपुरुषं वा विदुर्विदन्ति । उक्तञ्च पातञ्जलयोगसूत्रे - क्लेशकर्मविपाकशयेरस्पृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।पुनः पञ्चदशसर्गे चतुस्त्रिंशच्छ्लोकेषु साङ्ख्यदर्शनानुसारं महाकवि माघः भगवतः श्रीकृष्णस्य निर्गुणत्वं 'निर्गुणो हि पुरुषः' इति साङ्ख्याः दर्शयति । तेनायं - **'न महान् न प्रधानम् न तन्मात्राणि नाहङ्कारः अपितु पञ्चविंशकोऽयं पुरुषः'**। एवं माघकाव्ये (शिशुपालवधे) माघेन सविस्तरेण साङ्ख्ययोगदर्शनयोः तत्त्वानि विवेचितानि सन्ति । अनेन ज्ञायते महाकविमाघस्य साङ्ख्ययोगशास्त्रीय पाण्डित्यस्य प्रकर्षः । प्रकृतिपुरुषयोः वैशिष्ट्यं निरूपयत महाकविमाघः साङ्ख्ययोगतत्त्वानि बोधयति सर्वान् पाठकान् ।शिशुपालवधे माघः कथयति यत् श्रीकृष्णः 'साङ्ख्यशास्त्रीयः पुरुषः' इति । महाकाव्येऽस्मिन् भगवतः श्रीकृष्णस्य या स्तुतिः कृताऽस्ति यत् स्वरूपमुद्भावितमस्ति तत्र सर्वदर्शनानां समवायो दृश्यते । तत्र स एवं श्रीकृष्णः क्वचित् ब्रह्मरूपेण, क्वचित् जगदकर्तृरूपेण, क्वचिद् कर्मरूपेण, क्वचिद् साङ्ख्यपुरुषत्वेन, क्वचित् ईश्वरविशेषेण च बारं बारं आराधितः वर्णितश्च । अतएव आलोचकैः उक्तं यत् - **'मुरारिपद**

चिन्ता चेत् तदा माघे रतिं कुरू" इति । अनेन ज्ञायते महाकविमाघः भारतीयदर्शनशास्त्रस्य प्रकाण्डविद्वानासीत् । तेषां पाण्डित्यमत्र परिलक्ष्यते ।

सन्दर्भाः –

1 तिलकमञ्जरी पद सं - 25

2 शिशुपालवधम् – 1/31

3. सन्देहविषोषधिटीका – 1/31

4 शिशुपालवधम् – 1/33

5 सांख्यकारिका का. सं. – 19

6 शिशुपालवधम् (सर्वंकषा टीका) – 1/33

7 सांख्यकारिका का. सं. – 11

8 शिशुपालवधम् – 2/59

9. शिशुपालवधम् (सर्वंकषा टीका) – 2/59 पृ. 65

10 शिशुपालवधम् (सर्वंकषा टीका) – 4/55

11 शिशुपालवधम् (सर्वंकषा टीका) – 4/55

12 शिशुपालवधम् (सन्देहविषोषधि टीका) – 4/55

13 योगसूत्रम् – 1/33

14 शिशुपालवधम् (सन्देहविषोषधि टीका) – 4/55

15 शिशुपालवधम् – 9/14

16 शिशुपालवधम् (सर्वंकषा टीका) – 9/14

17 शिशुपालवधम् (सर्वंकषा टीका) – 9/14

18 शिशुपालवधम् (सन्देहविषोषधि टीका) – 9/23

19 शिशुपालवधम् – 14/19

20 शिशुपालवधम् (सन्देहविषोषधि टीका) – 14/19

21 शिशुपालवधम् (सन्देहविषोषधि टीका) – 14/61

22कादम्बरी (मङ्गलाचरणम्)

23 शिशुपालवधम् – 14/62

24. शिशुपालवधम् (सन्देहविषोषधि टीका) – 15/39-72

25शिशुपालवधम् (सन्देहविषोषधि टीका) – 14/60, 14/64, 12/55, 15/32, 15/8, 14/17,1/32

सहायकाचार्यः ,

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् ,नवदेहली ।

ध्वनितत्त्वविमर्श:

✍ डा. स्वर्गकुमारमिश्र:

साहित्यशास्त्रेतिहासे ध्वनिश्चरमाविष्कार: । काञ्चने मणिरिवात्र साहित्ये ध्वनिर्विद्योतते। काव्यात्मरूपस्य ध्वने: प्रस्थानरूपेणाविर्भाव: नवमशतके आचार्यानन्दवर्धनकृतध्वन्यालोक ग्रन्थेऽभूत् । ध्वनिनामगभीरकाव्यतत्त्वप्रदर्शनेन ग्रन्थरत्नमिदं काव्यशास्त्रजगति ब्रह्मसूत्रमिव भाति । ध्वनितत्त्वं सर्वोत्कृष्टकाव्यसौन्दर्यनिरूपकतत्त्वमिति मन्यमाना अभिनवगुप्तमम्मट विश्वनाथजगन्नाथादय: प्रायश: सर्वे प्रमुखा आलङ्कारिका: ध्वनिसिद्धान्तस्य समर्थकभावेन तद्व्याख्यानं स्वग्रन्थेषु कृता: वर्त्तन्ते । किञ्च पण्डितराजजगन्नाथ: रसगङ्गाधरे **'ध्वनिकृतामलङ्कारसरणि - व्यवस्थापकत्वात्'**(१) इत्युक्त्वा ध्वनिमार्गस्य परां पुष्टिं विदधाति । एवं स्थितस्य ध्वनितत्त्वस्य प्रकाश: साहित्यशास्त्रे कथमभूदिति विचार्यते ।

शब्दार्थकस्य **'ध्वन्'** धातो: **'इ'** प्रत्यये कृते(२) ध्वनिशब्दो निष्पद्यते । ध्वनि: शब्दे । संस्कृतवाङ्मये चिरात्प्रचलमानोऽयं ध्वनिशब्द: शब्दरूपेऽर्थेऽथर्ववेदे दृश्यते ।(३) तथा च महाभाष्येऽस्मिन्नेवार्थे मुनिना पतञ्जलिना प्रयुक्तो लभ्यते । यथोऽक्तम् – **"प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनि: शब्द इत्युच्यते । अथवा- शब्दं कुरु, मा शब्दं कार्षी:, शब्दकार्ययं माणवक: इति ध्वनिं कुर्वन्नेवमुच्यते । तस्मात् ध्वनि: 'शब्द:' इति"** । (४)साहित्यशास्त्रे प्रवृत्तोऽयं ध्वनिव्यवहार: वैयाकरणानां मतमाश्रित्य प्रचलतीति स्वयं ध्वनिकार: कथयति । उक्तञ्च –**"प्रथमे हि विद्वांस: वैयाकरणा: , व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम् । ते च श्रुयमाणवर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति । तथैवान्यैस्तन्मतानुसारिभि: काव्यतत्त्वार्थदर्शिभि: वाच्यवाचकसंमिश्र: शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्यो व्यञ्जकत्वसाम्यात् ध्वनिरित्युक्त:" इति** (५) । अपरञ्च- **"परिनिश्चितनिरपभ्रंशशब्दब्रह्मणां विपश्चितां मतमाश्रित्य-प्रवृत्तोऽयंध्वनिव्यवहार:"**(६)इति।एवमेव मम्मट: काव्यप्रकाशे कथयति- **" बुधैर्वैयाकरणै: प्रधानभूतस्फोटरूप-व्यङ्गव्यञ्जकस्य शब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहार: कृत: । ततस्तन्मतानुसारिभिरन्यैरपि न्यग्भावितवाच्य-व्यङ्ग्यव्यञ्जनक्षमस्य शब्दार्थयुगलस्य"** (७) इति । इत्थं ध्वनिसिद्धान्तमधिकृत्य साहित्यशास्त्रे व्याकरणस्य महान् प्रभावो विचक्षणशास्त्रकारै: प्रतिपादित: । अतो वैयाकरणानां मते कोऽयं ध्वनिरित्यादौ विविच्यते ।

<u>व्याकरणशास्त्रे ध्वनि:</u> - वैयाकरणानां मते स्फोटाभिव्यञ्जका: शब्दा: ध्वनिपदेनोच्यन्ते । **"ध्वनति स्फोटं व्यनक्तीति ध्वनि:"** वर्णानामुच्चरितप्रध्वंसित्वात् तैरभिव्यञ्जितो ध्वन्यात्मको नित्यशब्द: स्फोटनामा वैयाकरणैरङ्गीकृत: । यतो हि शब्दानां वर्णा आशुविनाशित्वात् स्वसंस्कारं श्रोतृषूपजन्य विलीयन्ते । वीचीतरङ्गन्यायेन श्रोतु: कर्णकुहरमागतेऽन्तिमवर्णे ते संस्कारा: समवेता: सन्त: शब्दस्वरूपमुत्पादयन्ति । स: स्फोट: , अर्थप्रत्ययरूप - फलोत्पादकत्वात् स एव प्रधान: । "**स्फुटयति प्रकाशयत्यर्थमिति स्फोट:" , "अथवा स्फुटत्यर्थो यस्मात्स: स्फोट:"** । तेनैव पदतदर्थप्रतीतिर्भवति । पूर्वपूर्ववर्णानुभवसंस्कारसहकृतान्त्यवर्णश्रवणेन सदसदनेकवर्णावगाहिनी पदप्रतीति: ।

तथा च वाक्यप्रतीतिर्जायते । यदुक्तं पतञ्जलिना –**"एकैकवर्णवर्त्तित्वाद्वाच: , उच्चरितप्रध्वंसित्वाच्च वर्णानाम्- एकैकवर्णवर्त्तिनी वाक् । न द्वौ वर्णौ युगपदुच्चारयति । तद् यथा – गौरित्युक्ते यावद् गकारे वाक् प्रवर्त्तते तावत् नौकारे , न विसर्जनीये , यावदौकारे न गकारे न विसर्जनीये , यावद् विसर्जनीये न गकारे नौकारे । उच्चरितप्रध्वंसित्वाच्च वर्णानाम् । उच्चरित: प्रध्वस्तश्च । अथापर: प्रयुज्यते । न वर्णो वर्णस्य सहाय: ।"**(८)इत्थं च कण्ठताल्वादिभि: स्थानै: तत्तदुच्चारणस्थानेषु वायोरभिघातनिर्गमाभ्यां य: शब्द: प्रथममुपजन्यते स: नादो ध्वनि: । तदभिव्यङ्ग्यश्च स्फोट: इति प्रथम: सिद्धान्त: ।अपरश्च केषाञ्चिन्मते शब्दजा: शब्दा: घण्टानुरणनरूपत्वात् ध्वनिशब्देनोच्यन्ते । अत्र हरिकारिका यथा –**"य: संयोगवियोगाभ्यां करणैरुपजायते । स: स्फोट: शब्दजा: शब्दा: ध्वनयोऽन्यैरुदाहृता: ।"** (९)इत्यत्र जिह्वाकण्ठताल्वादीनां संयोगवियोगाभ्यां प्रथममुत्पद्यमान: शब्द: स्फोट: ,तस्मात् समुत्पन्ना: श्रूयमाणा: शब्दा: ध्वनिरिति स्फोटकार्यत्ववादिभि: प्रतिपादित: ।अपि च वैयाकरणा: वृत्तित्रयमङ्गीकुर्वन्ति । तच्च-**"अभ्यासार्थे द्रूता वृत्तिर्मध्या वै चिन्तने स्मृता । शिष्याणामुपदेशार्थं वृत्तिरिष्टा विलम्बिता ॥"**(१०) इति एवमत्र वृत्ते: भेदत्रयमुपस्थापितम् । तत्र हेतु: साधारणोच्चारणव्यापारादतिरिक्तोऽन्य: कश्चिद्व्यापारो भवति .यमिमं वैकृतध्वनिशब्देन हरिचरणा: व्यपदिशन्ति । यदुक्तम्-

"शब्दस्य ग्रहणे हेतु: प्राकृतो ध्वनिरिष्यते ।स्थितिभेदनिमित्तत्त्वं वैकृत: प्रतिपद्यते ॥

शब्दस्योर्ध्वमभिव्यक्तेर्वृत्तिभेदं तु वैकृता । ध्वनय: समुपोह्यन्ते स्फोटात्मा तैर्न भिद्यते ॥" (११) इति

एवमेव येन स्फोटज्ञानं भवति स: प्राकृतध्वनि: । प्रकृत्यर्थबोधनेच्छया स्वभावेन वा जात: स्फोटव्यञ्जक: प्राकृत: । प्राकृताज्जातो विकृतिविशिष्टश्चिरस्थायी निवर्तको वैकृतिक: । स: ध्वनि: स्फोटाभिव्यक्त्युत्तरकालोत्पन्नो सम्बन्धरूपो यो भेदविशेष: तस्य निमित्तत्त्वं प्रतिपद्यते इति । वैकृता ध्वनय: स्फोटरूपशब्दस्याभिव्यक्तेरनन्तरं द्रुतमध्यमविलम्बितरूपं वृत्तित्रयं जनयन्ति । इत्थं वृत्तित्रयहेतुभूतव्यापाररूपेणात्र वैकृता ध्वनय: वैयाकरणै: स्वीकृता: । वैयाकरणानां ध्वनिमधिकृत्य विवेचनमिदं साहित्यकारै: यथा गृहीतं तदधुना आलोच्यते ।

<u>साहित्यशास्त्रे ध्वनि:</u> -साहित्यशास्त्रे सर्वप्रथमं काव्यविशेषस्य(१२) ध्वने: प्रतिपादनमानन्दवर्धनेन ध्वन्यालोके ग्रन्थे विहितं दृश्यते । स च **"प्रथमे हि विद्वांस: वैयाकरणा: , व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम् । ते च श्रुयमाणवर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति । तथैवान्यैस्तन्मतानुसारिभि: काव्यतत्त्वार्थदर्शिभि: वाच्यवाचकसंमिश्र: शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्यो व्यञ्जकत्वसाम्यात् ध्वनिरित्युक्त: "** इति । विज्ञाप्य ध्वने: पञ्चविधत्वमुपस्थापितम् । तन्मते व्यञ्जकशब्दार्थौ , व्यङ्ग्योऽर्थ: , व्यञ्जनाव्याअपार: , व्यङ्ग्यकाव्यश्चेत्यादय: व्यञ्जकत्वसाम्यात् ध्वनिशब्देन व्यपदिश्यन्ते । एते सर्वे वैयाकरणसरणिसमनुसरणसिद्धा एवेति यत् सूचितं तदत्र विवेचनीयम् ।। अत्राभिनवगुप्तेन यल्लोचनोन्मीलनं व्यधात् तदत्रोपस्थाप्यते । तद्यथा- **"वाच्य-वाचक-सम्मिश्र इति । वाच्य-वाचक-सहित: सम्मिश्र इति मध्यमपदलोपी कर्मधारयसमास: । गामश्वं पुरुषं पशुम् इतिवत् समुच्चयोऽत्र , चकारेण विनापि । तेन**

वाच्योऽपि ध्वनि: , वाचकोऽपि शब्दो ध्वनि: द्वयोरपि व्यञ्जकत्वं ध्वनतीति कृत्वा । सम्मिश्र्यते विभावानुभावसम्बलनयेति व्यङ्ग्योऽपि ध्वनि: , ध्वन्यते इति कृत्वा । शब्दनं शब्द: शब्दव्यापार: न चासावभिधादिरूप: , अपि तु आत्मभूत: , सोऽपि ध्वननं ध्वनि: । काव्यमिति व्यपदेश्यश्च योऽर्थ: , सोऽपि ध्वनि: , उक्तप्रकारध्वनिचतुष्टयमयत्वात् ,अत एव साधारणं हेतुमाह-व्यञ्जकत्वसाम्यादिति ॥" तदयमत्र फलितोऽर्थ:-**ध्वनति य: स व्यञ्जक: शब्दो ध्वनि: ।ध्वनति य: स व्यञ्जकोऽर्थ: ध्वनि: ।ध्वन्यते इति वस्त्वलङ्काररसादि: ध्वनि:। ध्वननमिति (ध्वन्यतेऽनेनेति वा) व्यञ्जनानामशब्दार्थव्यापारो ध्वनि: ।ध्वन्यतेऽस्मिन्निति काव्यविशेषो ध्वनिश्चेति ।** यथा स्फोटाभिव्यञ्जकेषु वर्णेषु ध्वनिशब्दो व्यवहृतो भगवता भर्तृहरिणा तथैव व्यञ्जकत्वसाम्यात् ध्वनतीति ध्वनिरिति व्युत्पत्तियोगाच्च शब्दार्थयोर्ध्वनिव्यवहार: साहित्यिकानामभिमत: । यथा च स्फोटकार्यत्ववादीनां मते अनुरणनरूपा: शब्दजा: शब्दा: ध्वनिशब्देनोक्ता: तथैव अनुरणनात्मके संलक्षक्रमव्यङ्ग्येषु , व्यङ्ग्यत्वसाम्याच्चासंलक्षक्रमव्यङ्ग्येषु (रसभावादिषु) ध्वन्यते य: स: ध्वनिरिति व्युत्पत्तियोगेन ध्वनिव्यपदेश: । एवञ्च वृत्तित्रयहेतुभूते व्यापारे वैकृतध्वनौ ध्वनित्वारोप: तथाऽत्र साहित्ये प्रसिद्धेभ्योऽभिधातात्पर्यलक्षणारूपेभ्योऽतिरिक्ते व्यञ्जनाव्यापारे व्यञ्जकत्वस्य सत्त्वात् ध्वननं ध्वनिरिति व्युत्पत्तियोगाच्च ध्वनिव्यवहार: क्रियते । एवमेवैतद्ध्वनिचतुष्टयमयत्वात् काव्यमपि ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिरित्यधिकरणव्युत्पत्त्या ध्वनिशब्दभाग्भवति । प्रोक्तमत्र लोचनकारेण-**"तद्योगाच्च समस्तमपि काव्यं ध्वनि काव्यमिति व्यपदेश्यश्च योऽर्थ: ,सोऽपि ध्वनि: उक्तप्रकारध्वनिचतुष्टयमयत्वात् ।"इति**(१३)एवं प्रकारेण व्यञ्जकशब्दार्थौ व्यङ्ग्यार्थ: व्यञ्जनाव्यापार: काव्यञ्चैतत् पञ्चकं व्याकरणसिद्धान्तसमधिकृत्य ध्वनिशब्देन वाच्यमिति साहित्यिकानां विचार: सर्वथैव नूतनो नास्ति ।इत्थं प्रवर्त्तितो ध्वनि: काव्यं वा काव्यात्मा वेति संशयास्पदविषयत्वेन परिलक्षते। यतो हि ध्वन्यालोके ग्रन्थप्रतिज्ञायां **'काव्यस्यात्मा ध्वनि'**रिति उक्त्वा ध्वनिकारिकायां ध्वनि:**'काव्यविशेष'**इत्युक्तमस्ति ।यदुक्तं ध्वनिकारिकायाम्**"यत्रार्थ:शब्दोवा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ, व्यङ्क्त: काव्यविशेष: स: ध्वनिरिति सूरिभि: कथित:॥"**(१४)एवञ्च ध्वनिसम्प्रदायस्य सम्मान्योऽनुयायी आचार्यो मम्मटोऽपि ध्वनिशब्दस्य प्रयोगं एतावन्मात्रे काव्यविशेषरूपे एवार्थे कृतवान् । तेन काव्यभेदनिरूपणे **" इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधै: कथित:"** (१५) इत्यादिना ध्वने: काव्यरूपत्वं स्पष्टीकृतम् । किञ्च आचार्यपण्डितराजेनापि ध्वनिरेवोत्तमोत्तमकाव्यमिति समर्थितम् । (१६) अत्र काव्यतदात्मनो: भेद: स्पष्टरूपेण प्रदर्शित: । तथापि कर्मसाधनत्वाभिप्रायेण काव्यस्यात्मा ध्वनि इत्यत्र भेदव्यपदेशस्य , अधिकरणसाधनत्वाभिप्रायेण तु काव्यं ध्वनिरिति अभेदव्यपदेशस्योपपत्ते: ।इदमप्यवगन्तव्यं यत् यथा शरीरे श्रेष्ठोंऽशरूपेण आत्मा विराजते तथैव ध्वनि: काव्यशरीरे श्रेष्ठोंऽशरूपेण भातीति **'य: समाम्नातपूर्व:'** (१७) पूर्वाचार्यै: **'सोऽयं कल्परूपमानमहिमा काव्याख्येऽखिलसौख्यधाम्नि विबुधोद्याने ध्वनिर्दर्शित:'** (१८) इति ध्वनिकार: कथयति । अस्यायमभिप्रायो यत्- यथा

वृक्षसमूहरूपे उद्याने वृक्षविशेषरूपेणात्मारूपेण वा कल्पतरुर्भाति तथैव सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थमये विविधवाच्यवाचकरचनाप्रपञ्चे गद्यपद्यचम्पू- रूपकादिप्रकारके काव्यसामान्ये व्यङ्गव्यञ्जकरूपो ध्वनिकाव्यमात्मेति । काव्यसामान्ये स्थितोऽयमेवांश: समस्तं काव्यं सजीवयतीति इति कृत्वा ध्वनिरूप: काव्यविशेषाख्योंऽश: आत्मेति कथनं सर्वथा समीचीनं मे भातीति ।

संन्दर्भग्रन्थ-सूची---

१. रसगङ्गाधरे प्रथममाननम्

२.खनि-कस्य-ज्यसि-वसि-वनि-सनि-ध्वनि-ग्रन्थि-चलिभ्यश्च इति उणादि ५८९ सूत्रेण इ

३. अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम्-५/२०/७

४. महाभाष्ये पस्पशाह्निकम्

५. ध्वन्यालोके प्रथमोद्यते

६. तत्रैव तृतीयोद्योते

७. काव्यप्रकाशे प्रथमोल्लासे

८. महाभाष्ये पस्पशाह्निकम् -६/३/५९ सूत्रस्य भाष्ये

९. वाक्यपदीयम्-१/१०३

१०. परमलघुमञ्जुषा

११ . वाक्यपदीयम्-१/७७-७८

१२. (क) यत्रार्थ: शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ । व्यङ्क्त: काव्यविशेष: स ध्वनिरिति सूरिभि: कथित: ॥ ध्वन्यालोके १/१३

(ख) ननु ध्वनि: काव्यविशेष इत्युक्तम् ***॥ ध्वन्यालोके / तृतीयोद्योत:

(ग) *** काव्याख्येऽखिलसौख्यधाम्नि विबुधोद्याने ध्वनिर्दर्शित: ***॥ ध्वन्यालोके / चतुर्थोद्योत:

१३. ध्वन्यालोकलोचने ध्वनिकारिकाव्याख्याने प्रथमोद्योत:

१४. ध्वन्यालोके प्रथमोद्योत: / १३

१५. काव्यप्रकाशे प्रथमोल्लास:

१६. शब्दार्थौ यत्र गुणीभावितात्मानौ कमप्यर्त्थमभिव्यङ्क्तस्तदाद्यम् *** अमुमेव च प्रभेदं ध्वनिमामनन्ति इति । रसगङ्गाधरे प्रथममाननम्

१७. ध्वन्यालोके प्रथमोद्योत: / ग्रन्थप्रतिज्ञायाम्

१८. ध्वन्यालोके चतुर्थोद्योत:

प्राध्यापक: ,रा.सं.सं ,मुम्बई

व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषामिति विचारः

✍मौनिका बोल्ला

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकोपायबोधकोऽपौरुषेयवाक्यस्वरूपः ब्रह्मराशिर्वेदः । स च साङ्गः प्रतिष्ठाधायको भवति । अतः वेदमधिकृत्य ऋषयः षडङ्गानि व्यरीरचुः । तेषु व्याकरणं वेदपुरुषस्य मुखस्थानीयं भवतीति जगति प्रसिद्धमेव । व्याकरणं द्विधा - वैदिकम् वेदोक्तशब्दप्रक्रियाप्रतिपादकम्, लौकिकं लौकिकशब्द-प्रक्रियाप्रतिपादकम् । यथा – प्रातिशाख्यानि वैदिकानि, चान्द्रादिव्याकरण-शास्त्राणि लौकिकानि । एवं प्रायः निखिलं व्याकरणं व्याकरणस्य कस्यचित् एकस्यैवांशस्य प्रातिनिध्यं निदधाति , किन्तु पाणिनीयं व्याकरणम् एकमात्रं तादृशं प्रसिद्ध्यति यत् लौकिकवैदिकोभयशब्दप्रक्रियां निपुणमनुशास्ति । तत्र वैदिकप्रक्रियायामस्माभिः 'व्यत्ययो बहुलमि'ति[1]शास्त्रं भूयः परिलक्ष्यते । तत्र कोऽभिप्रायः महर्षिपाणिनेरिति विचारयन् पतञ्जलिराह –

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्त्तृयङाश्च ।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिद्ध्यति बाहुलकेन ।।[2]

परिभाषाणामिव इदमपि ज्ञापकसिद्धं श्लोकवार्त्तिकम् । व्यत्ययो बहुलमित्यत्र बहुलग्रहणमस्यां ज्ञापकम् । तत्कथंकृत्वा ज्ञापकमिति जिज्ञासायां , पूर्वमस्माभिः व्यत्ययो बहुलमित्यस्यार्थः विचारपदवीमारोहति । पाणिनीयाष्टाध्याय्यां विकरणप्रकरणस्थमिदं सूत्रम् । विकरणप्रकरणस्य प्रकृतत्वात् सूत्रेणानेन विधीयमानं कार्यं विकरणविषयमधिकृत्यैव भवतीति बोद्ध्यम् । प्रकृते छन्दसि शायजपि इति सूत्रात् छन्दसीत्यनुवर्त्तते । अतः सूत्रार्थो भवति – विकरणानां बहुलं व्यत्ययः स्याच्छन्दसि[3]। व्यत्ययः इति शब्दः वि-अति उपसर्गपूर्वकात् इण् गतौ धातोः एरच् इति सूत्रेण अच् प्रत्यये कृते , भावे णच् प्रत्यये कृते वा सिद्ध्यति । अतः व्यत्ययः इत्यस्य व्यतिक्रम्य गमनम् (यत्र यत् कार्यं विहितं तन्न स्यादन्यदेव स्यात् , अथवा द्वौ त्रीणि वा युगपदेव स्युः ,अथवा किमपि न स्यात्) इत्यर्थः । बहूनर्थान् लाति = आदत्ते इति बहुलम् । तच्च चतुर्विधम् – क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ।। इतिवचनात्यथा - आण्डा शुष्मस्य भेदति[4] , भिनत्तीति श्नमो विषये शपो विधानम् । जरसा मरते पतिः[5] , म्रियते इति प्राप्ते मरते इति रूपम् । क्वचिद्विविकरणता – इन्द्रो वस्तेन नेषतु, नयत्त्विति प्राप्ते नयतेर्लोट् , शप्सिपौ द्वौ विकरणौ । क्वचित्त्रिविकरणतापि – इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्[6] , तरेमेति प्राप्ते ऊः , शप् , सिप् चेति त्रयो विकरणाः । इत्थं ' विकरणानां बहुलं व्यत्ययः स्याच्छन्दसि इति सूत्रार्थावगमे काचिच्छङ्कोपपद्यते बोद्धुश्चेतसि , यत् व्यत्ययः इत्येव कथन्न सूत्र्यते ? व्यत्ययः इत्येव सूत्र्यताम् । तदा च छन्दसि शायजपि[7] इति पूर्वसूत्रात् अपि शब्दस्यानुवृत्तौ सूत्रार्थो भवति – विकरणानां छन्दसि व्यत्ययोऽपि स्यात् । तदित्थं अपि शब्दग्रहणात् विकरणाः यथायथम् अर्थात् ये विकरणाः यस्मिन् विषये विहिताः ते स्वस्यात्मीये विषयेऽपि भविष्यन्ति , व्यत्ययश्चापि सिद्ध्यति । अतः बहुलग्रहणं न कर्त्तव्यम् , प्रयोजनाभावात् । एवं बहुलग्रहणं व्यर्थं सत्सूत्रकृदाशयं ज्ञापयति – सुप्तिङुपग्रहेत्यादि ।

कारिकार्थः – बाहुलकेन अर्थात् बहुलविषयत्त्वात् , शास्त्रकृत् = शब्दशास्त्रप्रवर्त्तकः महावैयाकरणः पाणिनिः व्यत्ययमपि इच्छति । तत्र क्व-क्व व्यत्यय इति जिज्ञासायां कारिकायां परिगण्यते – सुप्व्यत्ययः , तिङ्व्यत्ययः , उपग्रहव्यत्ययः(लादेशव्यङ्ग्यक्रयाविशेषो मुख्य उपग्रहः , इह तु तद्व्यक्तिनिमित्तत्वात् परस्मैदात्मनेपदयोरुपग्रहशब्दो वर्त्तते) = आत्मनेपदपरस्मैपदव्यत्ययः , लिङ्गव्यत्ययः , नरव्यत्ययः =

पुरूषव्यत्ययः , कालव्यत्ययः , हल्व्यत्ययः , अज्व्यत्ययः , स्वरव्यत्ययः , कर्त्तृव्यत्ययः = कृत्तद्धितव्यत्ययः , यङ्व्यत्ययश्च । ते चात्र क्रमेण सोदाहरणं विव्रियन्ते –

- सुपां व्यत्ययः – 'धुरि दक्षिणायाः'[8]। धुरि दक्षिणायामिति प्राप्ते सप्तम्याः विषये षष्ठी ।
- तिङां व्यत्ययः - ' चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति '[9] । तक्षन्तीति प्राप्ते झिप्रत्ययविषये तिप्प्रत्ययः ।
- उपग्रहस्य व्यत्ययः - ' ब्रह्मचारिणमिच्छते ', 'प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युद्ध्यति ' – इच्छति , युद्ध्यते इति प्राप्ते इच्छते , युद्ध्यति इति परस्मैपदात्मनेपदव्यत्ययः ।
- लिङ्गस्य व्यत्ययः - ' मधोस्तृप्ता इवासते ' । मधुन इति नपुंसकत्वे प्राप्ते मधोरिति पुंस्त्वम् ।
- नरस्य (पुरुषस्य) व्यत्ययः - ' अधा स वीरैर्दशभिर्वियूयाः'[10] ।वियूयादिति प्रथमपुरुषविषये मध्यमपुरुषः।
- कालस्य (कालवाची प्रत्ययस्य) व्यत्ययः – ' सोग्नीनाधास्यमानेन ' । लुटो विषये लृट् ।
- हलां व्यत्ययः – ' तमसो मा अदुक्षत् ' । अत्र अधुक्षत् इति प्राप्ते हल्व्यत्ययेन धकारस्य दकारः ।
- अचां व्यत्ययः - ' मित्र वयं च सूरयः' । मित्रा वयमिति प्राप्ते व्यत्ययेन दीर्घस्याकारस्य स्थाने ह्रस्वोऽकारः ।
- स्वरस्य व्यत्ययः - विषयेऽस्मिन् दीक्षितैः स्वरव्यत्ययस्तु वक्ष्यते[11] इत्युक्तम् । तच्च समासप्रकरणस्थपरादिश्छन्दसि बहुलमिति[12] सूत्रे बोद्ध्यम् । गवामिव श्रियसे । अत्र = श्रियसे इत्यत्र तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः[13] इति सूत्रेण कसेनि कृते कसेनः नित्त्वात् , ञ्नित्यादिर्नित्यम्[14] इति सूत्रेण आद्युदात्तत्वे प्राप्ते व्यत्ययेन मध्योदात्तत्वं भवति ।
- कर्त्तृव्यत्ययः = कृत्तद्धितव्यत्ययः – अत्र कर्त्तृशब्दः कारकमात्रपरः । परं कारकव्यत्ययस्तु सुप्तिङित्यनेनैव सिद्धः । तस्मात् पुनः कारकग्रहणेन कारकवाचिनां कृत्तद्धितानां व्यत्ययो बोद्ध्यः । अत एवोक्तं मूले – तथा तद्वाचिनां कृत्तद्धितानां व्यत्यय इति । यथा - ' अन्नादाय ' । अन्नमत्तीति अन्नादः तस्मै अन्नादाय । अत्र अन्नशब्दे कर्मण्युपपदे अदेः कर्मण्यण्[15] इति सूत्रेण अण्प्रत्यये व्यत्ययेन नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः[16] इति सूत्रादच् भवति । अत्र अणि अचि वा कृते अन्नादायेति प्रयोगभेदस्याभावेऽपि पदपाठे तु भेदविशेषो भवत्येव । अचि अन्न + अदाय इत्यवग्रहो बोद्ध्यः । अणि तु अन्न + आदाय इति स्यात् । ' न लक्षणेन पदकाराः' इति न्यायेनात्र फलान्तराभावाद् व्यत्ययफलं चिन्त्यमिति लघुशब्देन्दुशेखरे नागेशाः । न्यासमदमङ्गीकारास्तु कर्त्तृप्रत्ययः इत्यत्र कारकवाचिनां शब्दानामर्थात् विभक्तीनां व्यत्ययः इति वदन्ति। तदा ' आसादयद्भिरुभयोर्वेदाः ' इत्यत्र आसादयद्भ्यः इति सम्प्रदाने चतुर्थ्याः प्राप्तौ करणे तृतीया इत्युदाहरणं बोद्ध्यम् ।
- यङां व्यत्ययः – यङ् इति प्रत्याहारग्रहणम् । प्रत्याहारश्च सार्वधातुके यक्[17] इति सूत्रे यक् इत्यस्य यशब्दादारभ्य लिङ्याशिष्यङ्[18] इति ङकारेण बोद्ध्यम् । आण्डा शुष्णस्य भेदतीत्यादीन्यस्योदाहरणानि ।

तदित्थं यस्मादेवं सूत्रे प्रकृतानामप्रकृतानाञ्च बाहुलकेन व्यत्ययः स्यादिति प्रयोजनाय भगवता पाणिनिना सूत्रे बहुलग्रहणं कृतम् । इतोऽपि यद्यन्ततश्चिन्तयामश्चेत् सर्वापि वैदिकप्रक्रिया 'बहुलं छन्दसि' , 'व्यत्ययो बहुलम्' इति सूत्रद्वयेनैव साध्या ।ततः सूत्रेतराणि त्वनयोरेव प्रपञ्चमात्राणि , यथाप्रकरणं स्पष्टार्थं वा प्रक्लृप्तानीत्यध्यवसीयते ।वस्तुतस्तु वैदिकशब्दानामिव सन्ति लोकेऽपि केचन शब्दाः , ये व्याकरणशास्त्रेणागृहीताः, येषु च लोपागमवर्णविकारादीनां विपर्ययो दृश्यते । यथा – पृषदुदरं यस्येति पृषोदरम् – तलोपः । जीवनस्य मूतो

जीमूतः - जीवनशब्दघटकवनशब्दस्य लोपः । वारिवाहको बलाहकः- वारिशब्दस्य बादेशः उत्तरपदादेर्वकारस्य च लत्वम् । शवानां शयनं श्मशानम् – शवशब्दस्य श्मादेशः , शयनशब्दस्य शानादेशश्च । पिशिताशः पिशाचः – पिशिताशशब्दयोर्यथायोगं पिशाचशब्दावादेशौ । इत्यादीनि । अथेदृशानां व्याकरणशास्त्रेणागृहीतानां शब्दानां साधुत्वप्रतिपादनं यथा स्यादित्युक्तं भगवद्भिः – पृषोदराणि यथोपदिष्टमि[19]ति । अस्यायमर्थः – पृषोदरप्रकारकाणि शब्दरूपाणि , येषु लोपागमवर्णविकाराः शास्त्रेण न विहिताः , दृश्यन्ते च , तानि शिष्टैर्यथोच्चारितानि तथैव साधूनि स्युः । सूत्रेऽस्मिन् भाष्यकाराः ब्रुवते – 'पृषोदरादीनीत्युच्यन्ते कानि पृषोदरादीनि ? पृषोदरप्रकाराणि । कानि पुनः पृषोदरप्रकाराणि ? येषु लोपागमवर्णविकाराः श्रूयन्ते न चोच्यन्ते । अथ किमिदमुपदिष्टानीति ? उच्चारितानि । कुत एतत् ? दिशिरुच्चारणक्रियः । उच्चार्य हि वर्णानाह उपदिष्टा इमे वर्णा इति । कैः पुनरुपदिष्टाः ? शिष्टैः । के पुनः शिष्टाः? वैयाकरणाः । कुत एतत् ? शास्त्रपूर्विका हि शिष्टिः । वैयाकरणाश्च शास्त्रज्ञाः । यदि तर्हि शास्त्रपूर्विका शिष्टिः,शिष्टिपूर्वकश्च शास्त्रम् , तदितरेतराश्रयं भवति , इतरेतराश्रयाणि च न प्रकल्पन्ते । एवं सति निवासतश्चाचारतश्च । स चाचार आर्यावर्त्त एव । कः पुनरार्यावर्त्तः ? प्रागादर्शात्प्रत्यक्कालकवनाद्दक्षिणेन हिमवन्तमुत्तरेण पारियात्रम् । एतस्मिन्नार्यावर्त्ते निवासे ये ब्राह्मणाः कुम्भीधान्याः अलोलुपा अगृह्यमाणकारणाः किं चिदन्तरेण कस्माश्चिद्विद्यायाः पारङ्गतास्तत्र भवन्तः शिष्टाः ।'[20] इति । अतस्तदेवं व्यत्ययो बहुलम् , बहुलं छन्दसि , पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् इत्यादीनां सूत्राणां, व्याकरणशास्त्रेणागृहीतानां वेदप्रयुक्तानां शिष्टप्रयुक्तानाञ्च सकलतत्तच्छब्दानां साधुत्वप्रतिपादकत्वं बोद्ध्यम् ।

निष्कर्षः – अनन्तो वै शब्दराशिः । शब्दानामन्त्यात् श्रृङ्गग्राहिकतया सकलशब्दानामनुशिष्टिरशक्या विधातुम् । इष्यते च तत्र 'प्रयुक्तानामिदमन्वाख्यानं व्याकरणम्' इति पातञ्जलवचनानुरोधेन सकलशब्दसाधुत्वप्रतिपादनम् । अतः अस्यां स्थितौ पृषोदरादीनि निपातनसूत्रादीनि पाणिनिना निर्मितानि । वेदे च 'छन्दसि दृष्टानुविधिः' इत्यनुरोधेन दृष्टानां पदानां सिद्धिः यदि प्रतिपदं प्रतिसूत्रमिति सिद्धान्तेन क्रियेत तर्हि लक्षणानां महद् गौरवं स्यात् । अतः 'व्यत्ययो बहुलम्' 'छन्दसि बहुलम्' इत्यादीनि सूत्राणि ऋषिभिः प्रणीतानीति दिक् ।

पादटिप्पण्यः -

1. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः (3-1-85) ।
2. व्याकरणमहाभाष्यम् (3-1-4-87) ।
3. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी – सू .3433
4. ऋग्वेदः (8-40-11) ।
5. तदेव (10-86-1) ।
6. तदेव (7-48-1) ।
7. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः (3-1-84) ।
8. ऋग्वेदः (1-164-9) ।
9. तदेव (1-162-6) ।
10. तदेव (7-104-15) ।
11. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी – सू .3433
12. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः (6-2-199) ।
13. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः (3-4-9) ।
14. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः (6-1-197) ।
15. तदेव (3-2-1) ।
16. तदेव (3-1-134) ।
17. तदेव (3-1-67) ।
18. तदेव (3-1-86) ।
19. तदेव (6-3-109) ।
20. व्याकरणमहाभाष्यम् (6-3-3-109)

गवेषिका, व्याकरणविभागे ,राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,क.जे सोमैया संस्कृतविद्यापीठम्

अभिक्रमिताधिगमः अष्टाङ्गयोगश्च

✍सत्यदेवः

सिड्नी एल्. प्रैसीमहोदयः क्रि.प.1920 तमे वर्षे एकं यन्त्रं निर्मितवान्। तद्यन्त्रं छात्रस्य पुरस्तात् प्रश्नानाम् एकां शृङ्खलामुपस्थापयति। प्रथमप्रश्नं पठित्वा यदा छात्रः उत्तरं ददाति तदा यन्त्रं सद्यः एव तस्य उत्तरं सत्यम्, असत्यं वा प्रदर्शयति। ततः द्वितीयं प्रश्नमुपस्थापयति। एवं छात्रः स्वविजयेन (उत्तरस्य सत्यताज्ञानेन) प्रोत्साहितः द्विगुणितवेगेन निर्धारितानि उद्देश्यानि अधिगच्छति। सिड्नीप्रैसीमहोदयेन प्रख्यापितश्च यन्त्रमेतद् यद् वर्तते तद् बहूनां शिक्षकाणां कार्यं स्वयमेव निर्वहणे समर्थं भवति। परन्तु तस्मिन् काले जनानां निरुद्योगसमस्यायाः कारणात् एतस्य यन्त्रस्य प्रोत्साहनं न लब्धम् ।

ततः क्रि.प. 1950 तमे वर्षे प्रो.बी.एफ् स्किनर्-महोदयः अधिगमस्य विषये स्वयमुपस्थापितस्य व्यवहारनिबन्धनसिद्धान्तस्य (Oprent Conditioning Theory) आधारेण नवीनां स्वशिक्षणपद्धतिम् **अभिक्रमितानुदेशनम्** (Programmed Instruction) इति नाम्ना प्रसिद्धाम् आविश्चकार। शिक्षणप्रक्रियायां शिक्षक-छात्रयोर्मध्ये अन्तःक्रिया महत्त्वपूर्णा। समुचितरूपेण अन्तःक्रियामाध्यमेनैव शिक्षकः स्वोद्देश्येषु साफल्यं भजते। समुचितप्रतिक्रियायाः कृते शिक्षकस्य अवधानं छात्रेषु व्यक्तिगतत्वेन भवेत् । परन्तु अधुना वर्धिष्यमाणायाः जनसंख्यायाः, ज्ञानस्य विविधक्षेत्रेषु शीघ्रगत्या विकासस्य च कारणेन प्रत्येकं छात्रेषु व्यक्तिगतावधानस्य प्रदानम् अध्यापकस्य कृते जटिलं कार्यमभवत् । एतादृश्यां परिस्थितौ शिक्षणस्य नवीनविधीनाम् अन्वेषणमपेक्षितंऽ येन छात्रः स्वयमेव ज्ञानार्जनं कर्तुं ऽशक्नुयात् । अस्मिन् क्षेत्रे शिक्षणस्य नवीनविधिः **अभिक्रमिताधिगमः।**

अभिक्रमिताधिगमः इत्यस्य अभिप्रायो वर्तते क्रमबद्धाधिगमःइति। अभिक्रमिताधिगमः इत्यस्य अभिप्रायोऽस्ति क्रमबद्धाधिगमः इति। बी.एफ्.स्किन्नर्-महोदयः अस्य प्रविधेः जनकः। तस्य मतानुसारेण अभिक्रमितानुदेशनं शिक्षणस्य कला,अधिगमस्य च विज्ञानं वर्तते ।अभिक्रमिताधिगमेन छात्राणां सम्मुखे विषयवस्तु लघुनियोजितसोपानेन प्रस्तुतं भवति । अस्य संरचनायां शिक्षणसूत्राणामनुसरणं भवति। तेन छात्रः ज्ञातादज्ञातं प्रति इति शिक्षणसूत्राधारेण स्वयमेव ज्ञानं प्राप्नोति। अस्मिन् विधौ छात्रेण कृतस्य कार्यस्य पुष्टिः अपि शीघ्रं भवति। अभिक्रमिताधिगमः आधारभूतमध्ययनं वर्तते। प्रभावपूर्णं रोचकं च ज्ञानं स्थायिरूपेण अधिगन्तुं शक्यते।

पातञ्जलकृतयोगदर्शने अष्टाङ्गयोगक्रमःअपि अभिक्रमिताद्योतको वर्तते। तत्र अपि आत्मनः परमात्मना साकं मेलनमिति समाधिः। पातञ्जलयोगदर्शने **-यम-नियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिश्च अयमष्टाङ्गयोगः** प्रोक्तः।[1]अत्र- **अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहाःयमाः[2] यम** उपरमे धातोः उत्पन्नः यमशब्दोऽयं -

निवृत्तिक्रियावाचकः अर्थात् अष्टाङ्गसिद्ध्यर्थं यमान्तर्भूताहिंसासत्यमस्तेयप्रभृतकर्मानुकूलव्यवहाराचरणोत्तरक्रमे एव द्वितीयसोपाने उक्ता आत्मशुद्धिःसाधयितुं शक्यते। नियमन्ति प्रेरयन्ति इति नियमाः-

[1] योगसूत्रम्-2-29

[2] योगसूत्रम्-2-30

शोचसन्तोषतपस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानमिति नियमाः[3]आत्मशुध्यर्थं नियमसोपानगमनं कर्त्तव्यमेव यमनियमयोःपालनं गमनागमनसमये कर्तुं शक्यते परं प्राणायामाभ्यासाय आसनमेव आवश्यकम् ।**आस्यते अनेनेत्यासनम्**[4]**,आसीनःसंभवात्**[5] ब्रह्मसूत्रे अपि निगदितं यत् आसनध्यानसमाधिप्रभृतकर्माणि उपवेशनेन एव सिद्धिर्भवति।प्रत्याहारसोपानस्पर्शाय प्राणायामःविधेयः एव महर्षिवसिष्ठेन **प्राणापानयोःसमुचितसंयोगः प्राणायामः**[6] राजयोगे अपि तस्मिन् सति **श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः**।[7]अष्टाङ्गयोगक्रमे प्राणायामस्य अनन्तरं प्रत्याहारस्य वर्णनं कृतम्। प्रति उपसर्गपूर्वकं, आ उपसर्गपूर्वकं हृ धातुना साकं घञ् प्रत्यये योजिते सति प्रत्याहारः इत्यस्य सिद्धिर्भवति। अस्य च अर्थः वर्तते प्रत्याकर्षणम् अर्थात् इन्द्रियाणां तेषां विषयेभ्यःवारणमिति।[8] चित्तनिरोधेन इन्द्रियनिरोधः अपि स्वतः जायते । यथा रानी मक्खी के रुक जाने पर अन्य मक्खियाँ भी स्वयं रुक जाती हैं।[9]

धारणा - अष्टाङ्गयोगे पौर्वापर्यक्रमे प्रत्याहारस्य अनन्तरं धारणावर्णनं समुपलभ्यते। सा शक्तिः यस्यां कश्चिद्विषयः मनसि धार्यते।

यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहाराश्चेते पञ्चसाधनविषयाः बहिरङ्गत्वेन प्रोक्ताः,धारणाध्यानसमाधिश्च अन्तरङ्गसंज्ञावाचकाः[10] **त्रयमेकत्र संयमः**[11]

उपान्ते- ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते, अर्थात् ध्याने निरतकारणात् आत्मविस्मृतिः ध्यानम् ।[12]**तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्** [13]एवं प्रकारेण- यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यानञ्च, इतः परमेव **समाधिः** इति कथितो वर्तते।समाधिः इति शब्दोत्पत्तिः सम् उपसर्गपूर्वक, आ उपसर्गपूर्वक / धातोः कित् प्रत्यये कृते सति भवति।[14]ध्यानं यदा ध्येयस्वरूपमात्रप्रकाशकः नैजध्यानाकाररूपरहिततुल्यो भवति, सेयं स्थिति समाधिः इति वर्णिता।[15]

---

[3] योगसुधाकरः पृ.43

[4] भो.वृ.पृ.225

[5] ब्रह्मसूत्रम्-4.17

[6] व.सं. 3.2

[7] यो.सू.2.49

[8] संस्कृतशब्दार्थः- शब्दकौस्तुभ, सम्पादक-द्वारकाप्रसादशर्मा तथा तारिणिश झा,चतुर्थ सं.1972 पृ.763

[9] भोगवृत्ति,पृ.268

[10] .योगसूत्रम्-3.7

[11] .योगसूत्रम् 3.4

[12] .संस्कृतशब्दार्थः- शब्दकौस्तुभ, सम्पादक-द्वारकाप्रसादशर्मा तथा तारिणिश झा,चतुर्थ सं.1972 पृ.575

[13] .योगसूत्रम् 3.2

[14] . संस्कृतशब्दार्थः- शब्दकौस्तुभ पृ.213

[15] .यो.सू.3.3

अस्मिन अष्टाङ्गक्रमे अभिक्रमिताधिगमः वर्तते एकमपि सोपानं यदि न आचर्य्यते चेत् अष्टाङ्गसिद्धिः नैव साध्या अपितु अशक्या असम्भवा च वर्तते।

प्रत्येकं विषयम् उपस्थापनं,तत्सिद्धये सततताभ्यासः अभ्याससातत्येन प्रयोगसफलता, प्राप्तायां सफलतायां च सन्तोषावाप्तिः, अवाप्तसन्तोष एव साधकस्य कृते प्रोत्साहात्मकं पुनर्बलनं च वर्तते ।

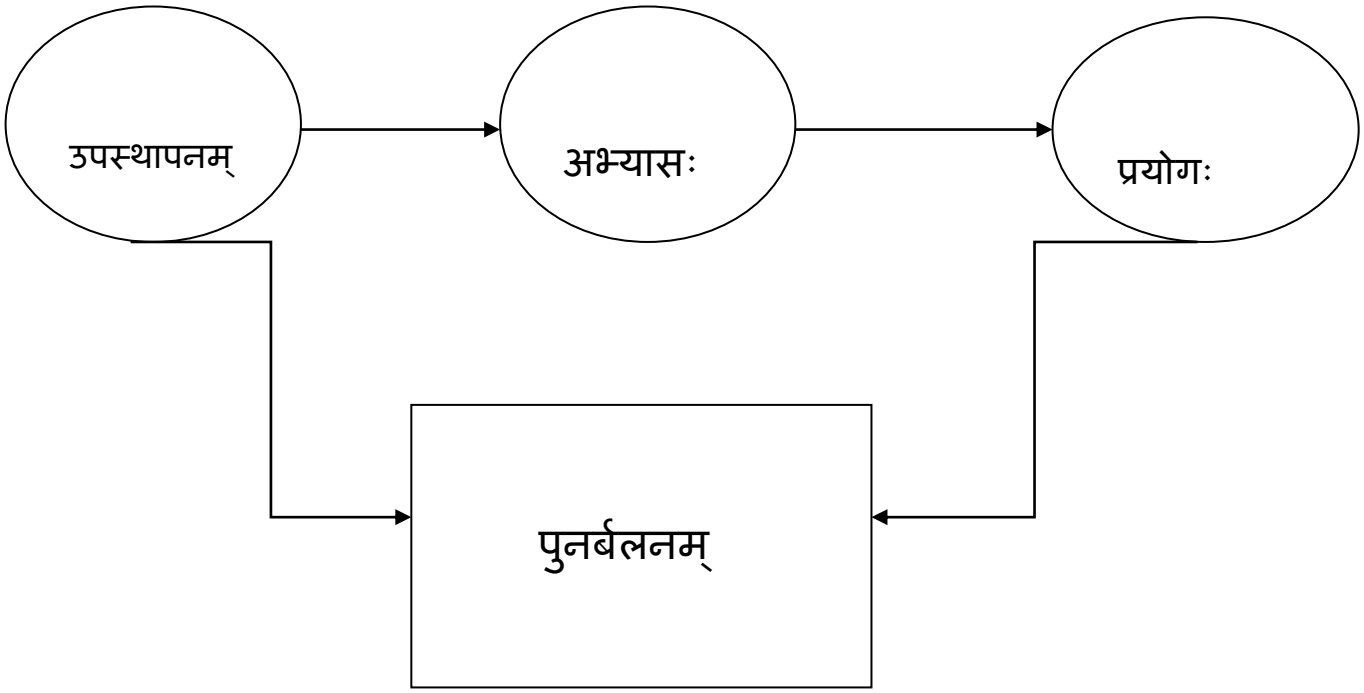

शोधच्छात्रः, रा.सं.सं ,मुम्बई ।

ज्योतिर्विज्ञान-भाग्य और पुरुषार्थ

✍आचार्य रामदेव झा

ज्योतिर्विज्ञान क्या है ?वेदांग के रूप में ज्योतिष विज्ञान है।विज्ञान के दो रूप हैं-एक भौतिक, दूसरा है आध्यात्मिक।भौतिक विज्ञान में समस्त शरीरादि पदार्थों की उपयोगिता और अध्यात्म विज्ञान में अध्यात्म वस्तु की विवेचना की जाति है। जिस प्रकार सांख्य और योग विज्ञान में एकता है, उसी प्रकार भौतिक और आध्यात्मिक विज्ञान मेंभी ।ज्योतिर्विज्ञान धर्म-अर्थ-काम और यश का प्रतिपादक है।(भास्कराचार्य-गणिताध्याय) वेद रुप शरीर में जिह्वा,नेत्र,कान,हाथ,नाक और पाद-ये छह अंग हैं।इन्हीं को षट्शास्त्र माना गया है ।

शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चाक्षुषी, श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ।
या तु शिक्षा वेदस्य सा नासिका पादस्युद्मद्वयं छन्द आद्यै बुधैः। (भास्कराचार्य)

ज्योतिष का निदान वेद है। दर्शनशास्त्र में द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवायऔरअभाव ये सात पदार्थ कहे गए हैं।इनमें अभाव पदार्थ को छोड कर छः भाव पदार्थ हैं।द्रव्य नौ हैं - पृथवी-जल-आकाश-दिशा-काल-आत्मा और मन। द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवाय ये सभी द्रव्याश्रयी हैं।द्रव्य से अलग नहीं रह सकते।शरीराश्रित पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय हैं। मन एकादश इन्द्रिय है।यह चंचल है।बंधन और मोक्ष का कारण है।अन्य इन्द्रियों के साथ मन का सम्बन्ध होने से जीव विषय का भोग करता है।गुण और क्रिया द्वारा ही पदार्थ तत्वों का ज्ञान है।एक ही क्रिया समस्त चराचर जगत् में अलग-अलग देह और जाति में संभव नहीं है।पृथक्-पृथक् शरीरधारी जीव के अलग-अलग गुणक्रिया के द्वारा भोगादि कर्म होते हैं।ज्योतिष पूर्ण विज्ञान है।बौद्धिक अनुभूतियों का समूह जब बुद्धि क्षेत्र में एक नियम बनाता है और वह बुद्धि क्षेत्र द्वारा परिमार्जित होकर सिद्धान्तरुप बन जाता है तो उसे भौतिक अथवा पार्थिव विज्ञान कहते हैं।इसी प्रकार आध्यात्मिक अनुभूति ज्ञान में एक नियमित मार्ग या प्रक्रिया बनाकर ज्ञान द्वारा चरितार्थ हो जाती हैं तो उन्हें अध्यात्मविज्ञान कहा जाता है।विज्ञान के दो भाग हैं-भौतिक तथा आध्यात्मिक। भौतिक शाखा में नियम और आध्यात्मिक शाखा में उसकी निष्पत्ति तथा यौगिक प्रतिक्रियाएँ होती है।

अतःजिस विज्ञान में दोनों शाखाओं का पग-पग पर प्रतिपादान होता है वह पूर्ण विज्ञान है।उक्त दोनों शाखाएँ ज्येतिष में गणित(सिद्धान्त) और फलित रूप में वर्णित हैं।अतः ज्येतिष पूर्ण विज्ञान है। इसे यों कह सकते हैं-बीज-अंक-और रेखा- इन उपकरणों द्वारा पार्थिव और आन्तरिक्षवस्तुओं के परिमाण स्थिति और गुण का विवेचन तथा नियमन जहाँ हो वह गणित है।इस गणित की पारिणामिक प्रतिक्रिया या प्रयोग जिस क्षेत्र में हो वह फलित है।

ज्ञानियों का कथन है कि क्रिया की प्रतिक्रिया होती है।जहाँ गणित क्रिया है वहाँ उसकी प्रतिक्रया फलित है।जैसे वृक्ष से फल होना आवश्यक है उसी प्रकार गणित से फलित होना अनिवार्य है ।ज्योतिर्विज्ञान काल विज्ञान है या काल विज्ञान शास्त्र है ।कोशकारों ने शास्त्र को विद्या और विद्या को विज्ञान कहा है(शब्दकल्पद्रूम)।भूमि और अन्तरिक्ष में स्थित जीवन के नियामक,उद्भव और संस्थापक सूर्य काल की आत्मा है।काल अनादि और अनन्त है।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ।

तत्र सत्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ।।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंघसमुद्भवम् ।तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंघेन देहिनम् ।।

कर्मान्यजन्मजनितं सदसच्च दैवं तत्केवलं भवति जन्मनि सत्कुलाद्ये

बाल्यात्परं विनयसौष्ठवपात्रता च पुंदैवजा कृषिवदित्युपपाद्यमेतत् ।।

ग्रहर्क्षतिथ्युद्गमराशिहोराद्रेःकाण भागाद्यनुकूलमात्रम् । भवेद्धियासोर्यदिसिद्धिहेतुः स्वयं भवेद्दैवविदेवरणा ।।

सर्वात्माच दिवानाथो मनः कुमुदबान्धवः । सत्त्वं कुजो बुधैः प्रोक्तो बुधो वाणीप्रदायकः ।।

देवेज्यो ज्ञानसुखदो भृगुर्वीर्यप्रदायकः। ऋषिभिः प्राक्तनैः प्रोक्तश्छायासुनुश्चदुःखदः ।।

रविचन्द्रौ तु राजानौ नेता ज्ञेयो घरात्मजः ।बुधो राजकुमारश्च सचिवौ गुरुभार्गवौ ।।

प्रेष्यको रविपुत्रश्च सेना स्वर्मानु पुच्छकौ । एवं क्रमेण वै विप्रा सूर्यादीम् प्रविचिन्तयेत् ।।

भाग्यम् –दैव दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः देवादागतं दैवं,

दिश्यते उपदिश्यते इति दिष्टं भाग्यं कर्म शुभाशुभम्।

भजसेवायाम् भज्यते अनेन इति भाग्यम्।

नियतिः– नियमे, दैवे इतिविश्वः, अपवादरहितः।

विधिः- विधीयते अनेन । विधिब्रह्मविधानयोः । विधि वाक्येय दैवे च प्रकारे काल कल्पयोः

प्राक्तनशुभाशुभकर्मणः षट् नाभानि । प्राक्तनशुभाशुभ कर्म भाग्यमिति कथ्यते

दैवाधीनं जगत् सर्वं जन्म कर्मशुभाशुभम् ।

संयोगाच्च वियोगाच्च न दैवात् परंबलम् ।।

पाद-टिप्पणी-

पुरुषार्थ – पुरुष + अर्थ = पुरुषार्थ ।
धर्म – अर्थ- काम – मोक्षरुप चतुर्विद्द।

पुरुष – पुरति, अग्रे गच्छति, पूरयति, आप्यायने, पुमान्,नर,जीव, जीवात्मा ।

पुरुषार्थ का पुरुष प्रयोजन – पुरुष का उद्देश्य, धर्म-अर्थ, काम इसकी पुरुषार्थ संज्ञा है।

पुरुषार्थी- उद्दमी परिश्रमी सामर्थ्यवान्।

धर्म – शुभकर्म, पुण्य,अहिंसा, श्रेय, सुकृत, न्याय, आचार आदि।यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

अर्थ – धन.

काम-मदन, कन्दर्प इच्छा, वासना, अभिलाषा, कार्य, सुन्दर, विषय

मोक्ष – मुक्ति, परमानन्दप्राप्ति, कर्मबन्धननाश।

ज्योतिष विभाग,
लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली।

उपनयन में कालविचार एवं गुरुशुद्धिविचार

✍ प्रो.हंसधरझाः

उपनयन वह कृत्य है जिसके द्वारा बालक, आचार्य के समीप ले जाया जाता है। जैसे कहा भी है -**उप समीपे आचार्यादीनां बटोर्नयनं प्रापणमुपनयनम्।[1] इति।।**उपनयन का अभिप्राय अत्यन्त व्यापक है। उपनयन एक ऐसा कृत्य है जिसके द्वारा व्यक्ति गुरु, वेद, यम-नियम, का व्रत और देवता के सामीप्य केलिये दीक्षित किया जाता है।

गुरोर्व्रतानां वेदस्य यमस्य नियमस्य च। देवतानां समीपं वा येनासौ नीयते द्विजः।।[2] इति।

यही उपनयन संस्कार व्रतबन्ध के नाम से भी जाना जाता है। चुँकि इस संस्कार में प्रथमतया यज्ञोपवीत धारण किया जाता है अतः इसका तीसरा नाम यज्ञोपवीत संस्कार भी हैं।

उपनयन में नित्य, काम्य एवं गौण काल तथा व्रात्य का लक्षण [3]- उपनयन संस्कार केलिये महर्षियों नें तीन तरह के कालों का निर्देष किया है- 1.नित्य, 2.काम्य और 3.गौण। सामान्य तौर पर उपनयन केलिये जो विहित काल (वर्ष) है उसे नित्य काल कहते हैं। कामनाविशेष केलिये जो उपनयन काल (वर्ष) बतलाया गया है उसे काम्य काल कहते है। तथा इन दोनों के अतिरिक्त किन्तु उपनयन की समयसीमा के अन्दर का समय (वर्ष) गौण काल कहलाता है।

1. नित्य काल - गर्भाधान से अथवा जन्मकाल से ब्राह्मण का 8 (आठवाँ) वर्ष, क्षत्रिय का 11 (ग्यारहवाँ) वर्ष तथा वैश्य का 12 (बारहवाँ) वर्ष उपनयन के लिये प्रशस्त माना गया है।

2. काम्य काल - गर्भाधान से अथवा जन्मकाल से ब्राह्मण केलिये ब्रह्मतेज की कामना से 5 (पाँचवाँ) वर्ष, क्षत्रिय केलिये बल की कामना से 6 (छठा) वर्ष तथा वैश्य केलिये अर्थ की कामना से 8 (आठवाँ) वर्ष उपनयन का समय प्रशस्त माना गया है।

3. गौण काल - गर्भाधान से अथवा जन्मकाल से ब्राह्मण का 16 वर्ष तक, क्षत्रिय का 22 वर्ष तक तथा वैश्य का 24 वर्ष तक उपनयन के लिये गौण काल माना गया है। अर्थात् नित्य काल अथवा काम्य काल में यदि उपनयन नहीं हो सके तो गौण काल में उपनयन कर लेना चाहिये।

4. व्रात्य लक्षण - अगर गौण काल में भी उपनयन नहीं होता है तो वह अनुपनीत बालक व्रात्य (अध्ययन, अध्यापन, भोजन, शयन, कन्यादान आदि सभी कर्मों में त्याज्य) हो जाता है। व्रात्य बालक शास्त्रोक्त व्रात्य-प्रायश्चित्त करने के बाद शुद्ध होता है।

उपनयन में गुरु(बल)शुद्धि-विचार उम्रविचार के बाद उपनयन में गुरुबल का विचार करना चाहिये। इसी गुरुबलविचार को यहाँ विवेचित किया जा रहा है।

(क) उत्तम, मध्यम, एवं अधम गुरुशुद्धि [4] -बालक की जन्मकुण्डली में चन्द्रमा जिस राशि में होता है वह राशि उस बालक की जन्मराशि कहलाती है। उसी जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरु की गोचरीय स्थिति के आधार पर गुरु(बल)शुद्धि का विचार किया जाता है।

1. उत्तम गुरुशुद्धि - जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरु यदि 2।5।7।9।11 वें स्थान में हो तो उपनयन केलिये उत्तम माना जाता है।

2. मध्यम (पूजोपरान्त उत्तम) **गुरुशुद्धि** - जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरु यदि 1।3।6 स्थानों में से कहीं पर स्थित हो तो

मध्यमगुरुशुद्धि होती है। किन्तु उपनयन करना अभीष्ट हो तो धर्मशास्त्रीय विधि से गुरु की पूजा, दान, जप आदि करने से गुरुशुद्धि उत्तम हो जाती है।

3. **निन्दित गुरु** - जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरु यदि उपर्युक्त स्थानों से अतिरिक्त स्थानों (4।8।10।12) में हो तो
4. उपनयन केलिये अधम माना जाता है।

<u>गुरुशुद्धि में मतान्तर [5]</u>

1. उत्तम गुरुशुद्धि - जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरु यदि 2।5।7।9।11 वें स्थान में हो तो उपनयन केलिये उत्तम माना जाता है।

2. मध्यम (पूजोपरान्त उत्तम) **गुरुशुद्धि** - जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरु यदि 4।10।12 स्थान में हो तो उपनयन केलिये मध्यम माना जाता है। किन्तु उपनयन करना अभीष्ट हो तो धर्मशास्त्रीय विधि से गुरु की पूजा, दान, जप आदि करने से गुरुशुद्धि उत्तम हो जाती है।

3. निन्दित गुरु - जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरु यदि उपर्युक्त स्थानों से अतिरिक्त (1।3।6।8) स्थानों में हो तो उपनयन केलिये अधम माना जाता है।इस प्रकार अनेक स्थलों पर शास्त्रीय वचनों में आपको अन्तर दीख पडेंगे। ऐसी दुविधा की स्थिति में आप को देशाचार को ध्यान में रखते हुये किसी मुहूर्त का निर्णय करना होगा।

<u>(ख) निन्दित एवं प्रशस्त गुरु का अपवाद [6] -</u> कभी कभी उक्त अशुभस्थन में स्थित गुरु भी अन्य परिस्थितिवश अनुकूलफलदायी हो जाते हैं। अर्थात् जन्मराशि से उपनयनकालिक गुरु उपर्युक्त अशुभस्थान में स्थित हो, किन्तु निम्नलिखित राशि अथवा नवांश में हो तो उपनयन केलिये गुरु प्रशस्त (शुभफलदायक) हो जाता है।

<u>निन्दित गुरु का अपवाद -</u>उपर्युक्त गुरुशुद्धि के अभाव में भी उपनयन किया जा सकता है, यदि-

1. गुरु अपनी उच्च राशि (कर्क) में विद्यमान हो।

2. अथवा गुरु अपनी राशि (धनु एवं मीन) में हो।3. अथवा गुरु अपने मित्र की राशि (मेष, सिंह, वृश्चिक) में स्थित हो।

4. अथवा गुरु अपने नवमांश में यानी धनु या मीन के नवांश में हो।

5. अथवा गुरु वर्गोत्तम नवांश में हो।**नोट** - जिस किसी राशि में उसी राशि का नवांश वर्गोत्तम नवांश कहलाता है।जैसे- मेष राशि में मेष राशि का नवांश (यानी प्रथम नवांश) वर्गोत्तम नवांश है। वृष राशि में वृष राशि का नवांश (यानी पंचम नवांश) वर्गोत्तम नवांश है। मिथुन राशि में मिथुन राशि का नवांश (यानी नवम नवांश) वर्गोत्तम नवांश है। इसी प्रकार कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, इन राशियों में (चर, स्थिर, द्विःस्वभाव राशियों में) क्रमषः प्रथम, पंचम, नवम नवमांश वर्गोत्तम नवांश होते हैं।

<u>प्रशस्त गुरु का अपवाद-</u>उसी प्रकार जन्मराशि से उपनयनकालिक (गोचरीय) गुरु को शुभस्थानों में रहने के बाबजूद कुछ अन्य परिस्थितिवश गुरु को शुभ नही माना जाता है। अर्थात् जन्मराशि से उपनयनकालिक (गोचरीय) गुरु उपर्युक्त शुभस्थान में स्थित हो, किन्तु निम्नलिखित राशि में हो तो उपनयन में गुरु अप्रशस्त (अशुभफलदायक) हो जाता है। यथा -1. गुरु अपनी नीच राशि (मकर) में स्थित हो।

2. अथवा गुरु अपनी शत्रु की राशि (वृष, मिथुन, कन्या, तुला) में हो।

(ग). उपर्युक्त गुरुशुद्धि के अभाव में अष्टकवर्ग का महत्त्व - ऊपर कहे गये नियमों के अनुसार यदि गुरुशुद्धि नहीं हो रही हो किन्तु उपनयनकाल का अतिक्रमण हो रहा हो तो अष्टकवर्ग के अनुसार गुरुबल देखना चाहिये। यानी अष्टकवर्ग के अनुसार गुरु(बल)शुद्धि हो जाने पर उपनयन का मुहूर्त निश्चय कर देना चाहिये। सुविधा केलिये नीचे गुरु का अष्टकवर्ग समझाया जा रहा है। इसकी सहायता से अष्टकवर्ग के माध्यम से गुरुशुद्धि का विचार किया जा सकता है। चुँकि सात ग्रह (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि) एवं लग्न इन आठों केलिये जन्मकुण्डलीगत आठों (सात ग्रह एवं एक लग्न) पदार्थों से अलग अलग वक्ष्यमाण स्थानों को शुभसूचक कहा गया हैं, अतः ये अष्टकवर्ग आठ होते हैं। जैसे सूर्य का अष्टकवर्ग, चन्द्र का अष्टकवर्ग इत्यादि। इस तरह गुरु का भी अष्टकवर्ग होता है, जिसके अनुसार उपनयन में गुरु की प्रबलता (गुरुशुद्धि) को जाना जाता है। यह गुरु का अष्टकवर्ग सुबिधा केलिये नीचे लिखा जा रहा है।

गुरु का अष्टकवर्ग[7] - जन्मकालिक कुण्डली में गोचरीय गुरु, सूर्य से 2।3।4।7।8।9।10।11 इन स्थानों में, चन्दमा से 2।5।7।9।11 स्थानों में, मंगल से 1।2।4।7।8।10।11 स्थानों में, बुध से 1।2।4।5।6।9।10।11 स्थानों में, गुरु (अपनें) से 1।2।3।4।7।8।10।11 स्थनों में, शुक्र से 2।5।6।9।10।11 स्थानो में, शनि से 3।5।6।12 स्थानों में तथा लग्न से 1।2।4।5।6।7।9।10।11 स्थानों में शुभ होता ।

(घ) गोचर एवं अष्टकवर्ग दोनों के अनुसार गुरुशुद्धि के अभाव में अपवाद-जिस बालक का उपनयन काल सम्प्राप्त हो किन्तु उस समय ना ही गोचरीय गुरुशुद्धि हो रही हो और ना ही अष्टकवर्ग से गुरुशुद्धि हो रही हो, ऐसी स्थिति में चैत्र के महीनें में मीनराशिगत सूर्य के रहने पर उपनयन का मुहूर्त निश्चय कर देना चाहिये। यथा रत्नकोष का वचन देखें **-गोचराष्टकवर्गाभ्यां यदि शुद्धिर्न लभ्यते। तत्रोपनयनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ।।[8]इति।**

इस तरह उपर्युक्त कालविचार एवं गुरुशुद्धिविचार दोनों ही उपनयन के लिये अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विषय हैं। प्राचीन मनीषियों नें अपनें दिव्य अनुभव के द्वारा इस तरह के विभिन्न मुहूर्तविषयक ज्ञानों को मानव हित की भावना से लोक में प्रदान किया है, जो निश्चय ही हम आस्तिकों के लिये अनुसरणीय है।

पाद-टिप्पणी-

1.भारुचि वीरमित्रोदय, सं.भा. 1,पृ.334 (हिन्दूसंस्कार, पृ. 149 से उद्धृत)

2. अभियुक्त वीरमित्रोदय, सं.भा. 1,पृ.334 (हिन्दूसंस्कार, पृ. 149 से उद्धृत)

3मनुस्मृति, 2 / 36-38

4.मुहूर्तचिन्तामणि, 5 / 46

5.ज्योतिषचन्द्रिका, मुहूर्तप्रकण, श्लो.196, पृ. 77

6.मुहूर्तचिन्तामणि, 5 / 47

7.लघुजातकम्, 11 / 9-10

8.मुहूर्तचिन्तामणि, 5 / 47 पीयूषधारायाम्

लेखकसङ्केतः -

आचार्य (ज्योतिषविभाग)राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,

मानितविश्वविद्यालयः,भोपालपरिसरः, भोपालम्।

ज्योतिष के आधार पर चिकित्सा (रत्नों के द्वारा)

✍ डॉ. श्रवण कुमार चौधरी

ज्योतिषशास्त्र ब्रह्माण्ड में पाये जाने वाले उन पदार्थों का वैज्ञानिक तथा गणितीय अध्ययन है जिसके द्वारा हमारी दिनचर्या, जीवनशैली तथा प्रकृति की रचना होती है। साथ ही साथ उनका संचालन भी प्रभावित होता है। अन्तरीक्ष में फैले सितारों का एक जटिल परन्तु व्यवस्थित तंत्र ही हमारा ब्रह्माण्ड है। ज्योतिषशास्त्र वैदिक ऋषियों की अलैकिक देन है। भारतीय विधाओं में इसका अनुठा स्थान है। इसके अन्तर्गत पिण्ड से ब्रह्माण्ड, व्यष्टि से समिष्ट के नम्बन्धों का अध्ययन समग्र रूप से होता है। वराहमिहिर ने ज्योतिष के विषय में कहा है कि **"प्रत्यक्षं ज्योतिषंशास्त्रम् चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ"**।

रोग होने पर उपचार की आवश्यकता होती है और लोग अपनी-अपनी आस्था तथा पसंद के अनुसार विभिन्न उपचार विधियाँ अपनाते है। रोग निवारण हेतु करीब 135 तरह की पद्धतियाँ है। प्रत्येक उपचार विधि के निष्णात् चिकित्सक हैं, सम्भव है आपकी कोई अपनी विधि हो। घरों में तो दादी माँ की विधि चलती है ओर हर परिवारों के पास अनुभूत घरेलू उपचार होते हैं। इष्ट मित्र, बन्धु-बान्धव, अरिजन-परिजन, अड़ोसी-पड़ोसी भी बिना मांगी सलाह देने में चूकते नहीं। तकलीफ बढ़ातो वेध हकीम डाक्टर भी बिलाये जाते है। शुरु होता है सिलसिला जाँच – पड़ताल का, अस्पताल में भर्ती होने का आध्यात्मिक लोग रोग के तीन भेद मानते हैं – अधिभौतिक, अधिदैविक और आधिदैहिक। ज्योतिष चिकित्सा एक विज्ञान है, वह गणित है, यह आध्यात्मिक विद्या है, जो व्यक्ति को पैदा होने के उपरान्त ही कुण्डली विवेचन के द्वारा यह संकेत कर देती है कि आपको किस उम्र में क्या होगा। आपको एक्सरे कराने के बाद विज्ञान यह सबूत देगा कि आपको अमुक परेशानी है, मगर आपकी जन्मपत्री, आपकी हस्त रेखाएँ, आपकी जन्म तिथि, इस बात को अपने जन्म लेते ही प्रमाणित करके दिखा देती है कि आपको अमुक समय मे यह रोग होगा ही, लोग किसी बिमारी को ठीक होने के लिए अन्य पद्धतियों में लम्बे समय तक इलाज लेते जब थक जाते है अर्थात् जब एलोपैथी या अन्य पैथी की दवा से हार जाते हैं या यूँ कहे कि जब विज्ञान हार जाता है तब हम अध्यात्म का मार्ग अपनाते हैं। ज्योतिष व्यक्ति का सच्चा मार्गदर्शक है जो बताता है कि आप किस तरह जिंदगी जीयेंगे तो रोग मुक्त हो सकते हैं और गलत तरीके से प्रतिकूल चलेंगे तो रोग को बढ़ा सकते हैं। ज्योतिष के मार्ग दर्शन से व्यक्ति बड़े से बड़े रोगों को भी छोटा रुप दे सकता है और निश्चित जिंदगी जी सकता है–

ग्रह - **होने वाले रोग**

सूर्य (आत्मा) – नेत्र, दाँत, नाखून, आँख, सिर पीड़ा ।

चन्द्र (मन) – अस्थमा (दमा), खांसी, कफ, अपच, मिर्गी, जुकाम, पागलपन ।

मंगल (रक्त) - ब्लडप्रेसर, वाणी, गले से सम्बन्धित रोग ।

बुद्ध (वाणी) – मस्तिष्क विकास, पक्षाघात, स्मृति ह्रास, सुनने, सूंघने, बोलने की शक्ति में ह्रास ।

बृहस्पति (ज्ञान) – पिलिया, मोतियाविन्द, रक्त कैंसर, उदर वायु, गठिया, साटिका, कटिवेदना ।

शुक्र (वीर्य) – चमड़ी रोग, कोढ़, सफेद दाग, गुप्तांग रोग, मधुमेह, नेत्र रोग, मूत्र रोग, एक्जीमा ।

शनि (दुःख) – बहरापन, दाँत दर्द, पायरिया, ब्लड प्रेसर, हाथ पांव में कपकपाहट ।

राहु + केतु – एक्जीमा, त्वचारोग, भूत प्रेत बाधा, दुर्घटना,राहु केतु से सम्बन्धित रोग की कठिनाई हो ज्ञात हो पाती है ।

मंगल + राहु, चन्द्र + राहु से – उच्च रक्त चाप।

चन्द्र + मंगल – निम्न रक्त चाप ।

शनि सूर्य के परस्पर दृष्टि से – हृदय रोग होता है। इसके अलावा **केतु + शनि** के योग कैंसर को जन्म देता है।

रत्न चिकित्साः

पेप्टिक अल्सर – लग्न का जब शनि या मंगल से दृष्टि – वेध होता है कर्क या कन्या राशि में शनि या केतु पांचवे भाव में मंगल की उपस्थिति से सूर्य या केतु के आक्रान्त होने पर सिंह राशि में शनि – राहु के योग होने पर यह बिमारी होता है। पन्ना, पीला नीलम, मध्यमा, अनामिका में धारण करें।

एड्स – शुक्र, मंगल – वृश्चिक राशि में हो, शनि – राहु के कुपित दृष्टि हो तो यह रोग हो सकता है । लग्न में स्थित मंगल या शनि पर चन्द्रमा की सीधी दृष्टि होने पर होता है। पुखराज - नीलम जांचकर धारण करें। सच्चे मोती की माला भी धारण कर सकते है। फीरोजा, मूनस्टोन, जिरकॉन रत्न भी धारण किया जा सकता है।

गठिया – मिथुन, तुला तथा कुंभ राशि के जातक इस रोग से अधिक पीड़ित होते हैं। बृहस्पति लग्न में शनि सप्तमभाव में रहे तो प्रबल संभावना रहती है। वृष, सिंह, कन्या, मकर, मीन राशियों में शनि राहु का योग और मंगल की सीधी दृष्चि वात रोग उत्पन्नकरता है। सूर्य कमजोर होने से गठिया होता है। शरीर से स्पर्श करता हुआ स्वर्ण या ताम्बा धारण करें। गोमेद तथा पीला पुखराज रोग वृद्धि को रोकता है।

नपुंसकता – पंचम तथा सप्तम भाव में पाप ग्रह, शुक्र मंगल या सूर्य से दूषित हो या सप्तम भाव में शनि या बुध हो तो यह रोग होने का योग बनता है। शनि की दृष्टि लग्न या सप्तम भाव पर हो तभी यह योग बनता है। हीरा वह भी सफेर रंग का तथा पीला पुखराज भी लाभकारी होगा।

हृदय रोग – सूर्य – चन्द्र पर यदि राहु, शनि, मंगल की कुदृष्टि हो, अशुभ सूर्य से राहु – मंगल का संयोग हो तो मादक पदार्थ का सेवन से यह योग बनता है। सूर्य – मंगल योग से रक्त विकार से रोग उत्पन्न होता है । लग्न जल तत्व राशि में हो उसमें मंगल, शनि तथा राहु का योग हो तो अचानक हृदयगति रुक जाने की प्रबल संभावना रहती है। सूर्य – चन्द्र से दृष्ट बृहस्पति लग्न में हो तो मोटापे से हृदय रोग होने की संभावना रहती है। मकर या कर्क राशि में बैठा पाप ग्रह भी हृदय रोग उत्पन्न कर सकता है। मूंगा और पुखराज धारण करें, यदि लाभ होता दिखाई न दें तो मोती और पन्ना धारण करें। निस्संदेह लाभ होगा ही।

सिरदर्द – चन्द्र लग्न पाप ग्रहों से दृष्टि हो तो सिर दर्द होता है। सूर्य और चन्द्र पर शनि, मंगल की कुदृष्टि से तीव्र सिर दर्द होगा। मेष राशि पर शनि राहु, केतु की दृष्टि से आधे – सिर में दर्द होता है। मंगल राहु तथा सूर्य – शनि का योग भी इस रोग का कारक है। माणिक्य मोती, पन्ना धारण करें। नवरत्न के पेंडल भी धारण कर सकते हैं।

रक्ताल्पता – केतु और त्रिकोण भावों का ग्रह विहिन होना इस रोग को जन्म देता है। सूर्य - शनि योग से रोग होता है। वृष, सिंह, कुंभ में केतु रहने से रक्त श्राव होने से यह रोग बनता है। बृहस्पति सिंह राशि में मंगल से छठे आठवें या बारहवें में भाव में या मंगल – कर्क में बैठा हो चन्द्रमा छठे भाव में हो तो भी यह योग बनता है। कलाई में लोहे का कड़ा पहनने। 5रत्ती मूंगा, 5 से 7 रत्ती पुखराज, सोने या चांदी की अंगूठी दायें हाथ में पहने।

दमा – बक्री बुध, नीच या शत्रुराशि का शनि रोग के कारक है। मेष, सिंह, कर्क राशि में शनि की उपस्थिति चौथे भाव में हो तो खान-पान में असावधानी से रोग होता है। मिथुन या सिंह में चन्द्रमा की उपस्थिति इस रोग का कारण है। 7 रती पन्ना, 5 रती पुखराज, 6 रती मूनस्टोन धरण करें। कार्तिक पूर्णिमा की रात को रखी गई खीर सुबह खाने से भी इस रोग मे आशातीत सफलता होता देखा गया है।

रक्त कैंसर – मंगल पर शनि तथा राहु केतु की दृष्टि रक्त दोष कारक है। तुला का शनि और सूर्य भी इस रोग को प्रश्रय देता है।

एलर्जी – माणिक्य या पुखराज धारण करना चाहिए ।

कुकुर खाँसी – बच्चे को लाल कपड़ा पहनायें तथा ताम्बे का छल्ला धारण करने से फायदा होता है। मरकत या पेरीडॉट भी हितकर है। ताम्बें का चैन भी गले में पहनाना चाहिये।

स्मृति दोष – मोती या माणिक्य गले में धारण करें। एक हाथ में 6 रती पन्ना तथा दुसरे में 7 से 9 रती मूंगा चाँदी की अंगूठी में धारण करें। चाँदी, सोना या तांबा मिश्रित धातु का कड़ा पहनाना भी हितकारी है।

सफेद दाग – चन्द्र, मंगल, शनि का मेष या वृष राशि में संयोग होतो रोग होगा। शनि बारहवें भाव में, मंगल दूसरे भाव में चन्द्र लग्न में तथा सूर्य सप्तमस्थ से योग बनता है। किसी भी जल राशि में चन्द्रमा तथा शुक्र का योग हो, चन्द्र, मंगल या लग्न का स्वामी राहु केतु युक्त हो, लग्नेश चन्द्रमा तथा बुध का राहु – केतु से युक्त का योग से यह रोग होने की प्रवल संभावना रहती है। यदि बुध शुक्र शनि में अस्त या वक्री होकर शुक्र नीच राशि में अस्त या वक्री या शनि राहु के बीच

होतो भी यह योग बनता है। एक या दो रत्ती हीरा 8 रत्ती फिरोजा 3 रत्ती मोती धारण करना हितकारी है। विशेष परिस्थिति में 4 से 7 रत्ती का पुखराज धारण करें।

एपेण्डिसाइटिस – मंगल प्रधान कारक है कन्या तुला, वृश्चिक राशियों में शनि, राहु का मंगल के साथ योग होना उसका कारण है। मेष लग्न शनि तुला लग्न तथा मकर लग्न के जातक इस रोग अधिक पीड़ित होते है। अनामिका में पुखराज गले में लाल मूगा, हिरा, माणिक्य अलग अलग हाथों में धारण करें।

बावासीर – सातवें एवं आठवें भाव में पापग्रह बैठा हो और मंगल की दृष्टि हो तो यह रोग होता है। वृश्चिक राशि का पापग्रह होना भी इसका कारक है। सफेद मोती, मूनस्टोन, लालमूँगा धारण करने से इस रोग में लाभ होता हैं।

कमर दर्द – बुध राशि पर पापग्रगह क दृष्टि होने शनि-चन्द्र युति से कमर दर्द होता है। 9रत्ती मूगा या माणिक्य तथा लोहे का छल्ला धारण करें। 3.2 के अनुपात में गोमेद, नीलम एक ही अंगूठी में धारण करें।

ब्रेन ट्यूमर – बुध पर यदि पापग्रह का प्रभाव परे तो इसका असर ब्रेन पर परता है। मेष राशि का शुक्र भी इसका कारक है। मेष का मंगल पापग्रह के प्रभाव में हो तो इस रोग की सम्भावना रहती है। हीरा, पन्ना, पीला पुखराज तथा लाल मूगा समान वजन का पेण्डेण्ट का कड़े में धारण करें। तीनों रत्नों को समान मात्रा एक ही अंगूठी में पहन सकते हैं।

पीलिया – शनि, राहु, केतु का बृहस्पति पर दृष्टि हो तो पिलिया रोग होता है। पन्ना 6 रत्ती, 8 रत्ती लाल मूंगा 5 पीला पुखराज एक चांदी का रत्न रहित अंगूठी तथा ताम्बे की कड़ा धारण करें।

कैंसर – चन्द्रमा छठे, आठवें बारहवे भाव में हो और तीन पापग्रह का दृष्टि होने पर यह रोग होता है। शनि, बृहस्पति. कर्क या मकर राशि में रहने से यह रोग होगा। मध्यमा में सोने या तांबे में माणिक्य, अनामिका में नीलम, शल्य-क्रिया के उपरान्त 4 से 7 रत्ती पुखराज और 8 रत्ती मूंगा धारण करने से लाभ होगा।

मिरगी – शुष्क लग्नेश (मेष, सिंह, या धनु) के जातक को यह रोग अधिक सताता है। चन्द्र, बुध के राहु से पीड़ीत होने पर केतु के साथ चन्द्र या बुध का योग भी रोग का कारक बनता है। पन्ना और मूनस्टोन तथा लग्नेश का रत्न धारण करना हितकारी है।

पथरी – लग्न के सातवें स्थान में पापग्रह या नीच राशि हो तो रोग का योग बनता है। कर्क राशि में शनि, मकर में अनेक ग्रह बैठा हो तुला का सूर्य तथा मीन राशि में अनेक ग्रह बैठा हो तो भी योग बनता है। नीला पुखराज, लाल मूंगा तथा मूनस्टोन धारण करें। इससे यदि काम नहीं चले तो माणिक्य या मोती धारण करना सहायक होगा।

गैंगरीन – लग्न, सप्तम या किसी भी केतु भाव में नीच या शत्रु राशि का शनि हो या लग्नेश शनि के साथ बैठा हो तो गैंगरीन होने का शंका बनती है। लाल धागा लाल कपड़ा या लाल मूंगे को साथ तांबे या लोहे का छल्ला धारण करें। तांबे के साथ माणिक्य धारण करना भी हितकर कहा गया है।

घेंघा – लग्न में पापग्रह हो या बुध बक्री अथवा अस्त हो तो घेंघा रोग हो सकता है। मिथुन, वृष राशि के बीच पीपग्रह बैठा हो या वृष राशि का सूर्य अस्त हो तो भी यह रोग हो सकता है। सफेद मोती, माणिक्य तथा लहसुनिया धारण करें। सुनौला, पुखराज, मूंगा एक साथ धारण करने से हितकारी होगा।

मस्तिष्क विकार – मिथुन, कुंभ, कन्या का प्रभाव भी मस्तिष्क पर पड़ता है। चन्द्र के साथ शनि, राहु की दशा होने पर मानसिक विकार होने का रोग बनता हैष मूनस्टोन, पीला पुखराज, पन्ना धारण करने से शांति मिलती है। लाल मूंगा सहायक रत्न के रुप में धारण करने से हितकारी होता है।

मोतियाबिन्द – वृष, मीन राशियां दायी वायी आँख का प्रतिनिधित्व करता है। छठे, आठवें, बारहवें भाव में यदि शुक्र बृहस्पति साथ बैठे तो यह योग बनता है। मंगल. बृहस्पति, शुक्र एक साथ बैठ जाय तो भी यह योग बनता है। पन्ना नेत्र ज्योति बढ़ाने में सहायक है। मेती खोई हुई नेत्र ज्योति लाता है। रोग के उपचार के दौरान माणिक्य धारण करें। गर्मी में माणिक्य के बदले लाल मूंगा ही पहने। तीन रत्ती के हिसाब से मूंगा, मोती, पन्ना एक साथ एक ही अंगूठी में धारण करें।

हैजा – नीच सूर्य, मंगल या शुक्र के रहने पर यह रोग होता है। मंगल बृपस्पति कन्या राशि में हो, आठवें भाव में सूर्य चन्द्र हो तो रोगी की मृत्यु हो सकती है। जब सिंह राशि या पांचवे भाव पर पापग्रह की दृष्टि या मंगलादि का गोचर हो तो हैजा होने का आशंका रहती है। 6 रत्ती पन्ना, पीला पुखराज और मूनस्टोन धारण करें। गोमेद तथा लहसुनिया घारण करना भी हितकारी है।

चिकन पोंक्स – चन्द्र, मंगल का संयोग तथा सूर्य का दूषित स्थिति होने पर रोग उग्र हो जाता है। ज्यादेतर यह रोग बच्चे को ही होता है। हाथ में तांबे का कड़ा पहनाना चाहिये गलें में लाल कपड़ा या लाल मूंगा धारण करावें।

मुंह में छाले – स्फटिक मोती, मूनस्टोन धारण करें। लाल धागा तथा लाल कपड़ा अवश्य पहना करें। तांबे के अंगूठी में मूगा धारण करें।

सर्दी जुकाम- शनि, चन्द्र रोग कारक है। 5 रत्ती माणिक्य तांबे के अंगूठी में धारण करें। लाल मूंगा, लाल कपड़ा धारण से भी रोग में कमी आती है।

कब्ज – लाल मूंगा तथा लाल कपड़ा धारण करें। सोने की अंगूठी में पुखराज धारण करने से लाभ होगा।

ऐंठन मरोड़ – मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या राशियों का राहु इस रोग का कारक है। नवधातु में काली अथवा लाल अकीक धारण करें। 8 बरती लाल मूंगा सोने या चाँदी में तथा 3-5 रत्ती गोमेद अष्टधातु में धारण करना चर्मरोग में बचाव होता है।

मधुमेह – कर्क, वृश्चिक, मीन राशि में दो या अधिक पापग्रह हो तो प्रवल संभावना बनती है। दूषित शुक्र और चन्द्र भी कारक है। बृहस्पति यदि लग्नेश के छठे भाव में हो तो तथा तुला राशि में अधिक पापग्रह होने पर भी यह योग बनता है। चन्द्र, शुक्र पर मंगल का योग भी रोग की संभावना व्यक्त करता है। छठे भाव का स्वामी अष्टम में, अष्टम का स्वामी छठे भाव में हो तो भी योग बनता है। लग्नेश का रत्न धारण करे। लाल मूंगा पीला पुखराज हितकारी है।

दांत दर्द – पर बृहस्पति का अधिकार है। दूसरे, नवे, बारहवें भाव में बृहस्पति पीड़ित हो तो दन्त रोग होगा। नीच राशि का बृहस्पति ऐसा योग बनता है। लोहे का कड़ा धारण करें। लाल या सफेद मूंगा भी धारणीय है। पुखराज पहनना भी हितकारी है।

हार्निया – शुक्र, मंगल इस रोग के कारक है। चाँदी के चेन में मोती के दाने पिरोकर गलें में धारण करें। हीरा व पीला पुखराज धारण करना भी हितकारी है।

यकृति शोथ – (हीपेटाइटिस ए.बी.) लग्नेश जल राशि में मोती पापग्रह के साथ हो तो इस रोग के होने का योग बनता है। बृहस्पति, सूर्य के पापग्रस्त होने, बुध के कमजोर होने या राहु केतु द्वारा चन्द्रमा के पीड़ित होने पर ऐसी दशा आती है। पीला पुखराज तथा माणिक्य धारण करें। सहायक रत्न के रुप में मूनस्टोन भी धारणीय है।

हिस्टीरिया – चन्द्र बुध और शनि का स्नायु तन्त्र पर प्रभाव पड़ता है। लग्न से पंचम, नवम भाव भी मस्तिष्क को प्रभावित करता है। यदि लग्न, पंचम, नवम में पापग्रह हो तो जातक को हिस्टीरिया होने की आशंका रहती है। लग्नेश के रत्न साथ पुखराज धारण करने से रोग की तीव्रता पर अंकुश लगता है। मूनस्टोन तथा मोती भी धारणीय है।

उच्च रक्त चाप – हृदय का कारक चन्द्रमा है। कर्क राशि में चन्द्र, शनि, चन्द्र राहु या मंगल युक्त हो तो किसी रोग के कारण उच्च रक्त चाप हो सकता है। मिथुन राशि में पाप ग्रह का होना इसका कारक है। चन्द्र, शनि, राहु, केतु का योग भी कारक है। दो या अधिक पाप ग्रह मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या या कुंभ राशि में एकत्र हो जाय तो परेशानी हो सकती है।लग्नेश का रत्न अवश्य धारण करें। 8-9 रत्ती का लाल मूंगा भी धारणीय है। सहायक रत्नों के रुप में पन्ना, मोती, मूनस्टोन अलग-अलग अंगूठी में धारण करें।

पक्षाघात – स्नायु का संचालनक बुध है। इसी के कुपित होने से पक्षाघात होता है। मूंगा तथा माणिक्य धारण करें। अतिरिक्त रत्न के रुप में मूनस्टोन भी धारण करने को कहा गया है।

लू लगना – इस रोग का कारक सूर्य तथा मंगल है। पीला पुखराज या मूनस्टोन धारण करने से रोग के प्रति खतरा कम हो जाता है।

निमोनिया – गोचर भ्रमण में सूर्य, गुरु, मंगल जब मिथुन सिंह या कुंभ क्षेत्र में भ्रमण करता है तो इस रोग की प्रबल से भावना बनती है। लाल मूंगा पीला पुखराज लाभकारी है।

टायफाइड – मूनस्टोन, पन्ना पीला पुखराज धारण करें।

तपेदिक – चन्द्र शनि या बृहस्पति जब मिथुन या कुंभ राशि में मंगल या केतु से आक्रान्त हो तो तपेदिक की आशंका रहती है। पीला पुखराज, सफेद मोती या लाल मूंगा धारम करने से रोग का प्रकोप कम होता है।

दुर्घटना – चतुर्थ या अष्टमभाव में कोई पापग्रह एकत्र हो तो अधिक दुर्घटनाएँ होने का योग बनता है। चन्द्रमा से केन्द्र या त्रिकोण का मंगल भी दुर्घटना का सूचक है। लोहा, तांबा या चाँदी में मूनस्टोन गढ़वाकर धारण करें। पुखराज से दुर्घटना से खतरा कम होती है। तथा मोती त्वचा को समान्य स्थिति बनाये रखने में सहायक होता है।

फोड़ा – लग्न पर मंगल की दृष्टि से फोड़ा फूसी होता है। 6 रत्ती मूनस्टोन तथा 4 रत्ती लाजर्द धारण करें। मूंगा नहीं पहने।

जलन – लाल कपड़ा धारण करें। 9 रत्ती लाल मूंगा तथा मूनस्टोन या सफेद मोती 3 रत्ती धारण करना हितकारी है।

आंत्रशोध – मेष राशि में सूर्य शनि का योग या सूर्य का नीच राशि का होना आंत्रशोध दर्शाता है। पन्ना तथा मूनस्टोन सोने या चांदी की अंगूठी में अलग अलग धारण करें।

पाद दोष – छठे भाव में यदि सूर्य या शनि में से कोई एक भी स्थित हो तो पाद दोष होता है। मकर कुंभ या मीन में राहु, केतु, सूर्य या शनि बैठा हो तो पैर में चर्म विकार होगा। पुखराज धारण करें। नीलम या लाजवर्त 8 रत्ती 3-4 रत्ती,माणिक्य या लाजवर्त 8 रत्ती सफेद पुखराज अलग अलग धारण करें।

ग्रन्थिलज्वर (वायलर बुखार) – मंगल के साथ सूर्य या बुध को योग से यह रोग होता है। लग्नेश रत्न के साथ माणिक्य धारण करें। लाल मूंगा (मंगल के लिए) लाल कपड़ा या लाल धागा धारण करने से भी रोगी को फायदा पहुचता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर्य, पित्र का नियंत्रक है, चन्द्र का प्रभाव मन पर है, मनोरोगी पूर्णिमा के दिन ज्यादा व्यग्र रहता है। हमारे शरीर की रक्त संचालक मंगल है जिसका सीधा प्रभाव हृदय पर परता है। बुध का प्रभाव गुर्दा पर है, गुर्दा शरीर का रिएक्टर का काम करता है। जिससे संपूर्ण शरीर में शुद्ध रक्त का संचार होता है। बृहस्पति यकृति (लीवर) की संचालक है जो एक रासायनिक फैक्ट्री है यह लाल स्वेत रक्त कणिका आवश्यकतेनुलार संतुलित बनाये रखता है। शुक्र प्रजनन अंग को प्रभावी करता है। पुरुषों में वीर्य का संचालन शुक्र के द्वारा ही होता है। शनि शीतल ग्रह है। शरीर के शीतल ग्रंथियों का संचालन मैलालीन की अनुकूलता रक्त शिराओं का नियंत्रण भी शनि क् द्वारा ही होता है। राहु और केतु हमारे पेट की बड़ी तथा छोटी आंत का संचालक तथा नियंत्रक है। इसकी भूमिका कारक होने पर आंतो का संचालन सही ढंग से होता है। मनुष्य की जन्म दशा में जो ग्रह प्रभावी होते है शरीर भी उन ग्रहों के अनुसार कफज या पित्तज प्रकृति का होता है। ध्वली प्रकृति की ही देन है। ध्वनि से ही स्वर व्यंजन की उत्पत्ति हुई जिससे शब्द बना और मानव अपना विचार दूसरों के समक्ष रखने में सफल हुआ। स्वर संरचना करता है तो व्यंजन उसे आकार प्रदान करती है। ब्रह्मांड में सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही शक्तियाँ स्वतंत्र रुप से एक निश्चित सह संबंधी बनाते हुए कार्य करती है स्वतंत्र होते हुए भी दोनों एक दुसरें के बिना अपूर्ण हैं। सूर्य, मंगल एवं बृहस्पति सूक्ष्म शक्तियों का घोतक हैं। तथा शनि, बुध एवं शुक्र स्थूल शक्तियों में परिलक्षित होते हैं। आज वास्टन वि. वि. अमेरिका में ऊँ थेरेपी तथा लंदल में श्रीयंत्र पर शोध चल रहा है। ऊँ थेरेपी द्वारा 40 प्रतिशत बांझ महिलाओं पर सकारात्मक असर हुआ है। इंडियन मेडिकल एसोसिएशन के संयुक्त सचिव डा. आशीष सबरवाल का कहना है कि चिकितसी ज्योतिष में दम है और यह एक सार्थक वैकल्पिक चिकित्सा उपचार पद्धति सावित हो सकता है। ज्योतिष चमत्कार विज्ञान नहीं है। यदि वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित सही गणना के द्वारा निष्कर्ष निकाला जाय तो इस विज्ञान का गलत होना असंभव है। चिकित्सा शास्त्री भी इसका सहयोग ले सकते हैं। इस दिशा में नये नये शोध की आवश्यकता है जिसके द्वारा समाज को ज्यादा फायदा हो सकें। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि ज्योतिषशास्त्र द्वारा संपूर्ण विश्व का कल्याण होगा।

ऊँ पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्युते । पूर्णस्य पूर्ण मादय पूर्ण मेवा व शिष्यते ।।

अंधेरी गली में खद्योत (भगजोगनी) का प्रकाश ही सही, मिल जाय तो रास्ता चलने में सहूलियत ही होगी।

उपाचार्य, स्नातकोत्तर साहित्य विभाग
का. सि. द. सं. वि. वि. दरभंगा, बिहार।

वैदिक व्यावसायिक प्रबन्धन:कतिपय वैदिक मन्त्रों के सन्दर्भ में

✍ डॉ. धनञ्जय मणि त्रिपाठी

मानव जन्म पूर्वार्जित सत्कर्मों का फल है। इसकी सफलता का मार्ग प्रशस्त करने के साधन को जीवनमूल्य कहा जाता है और यह जीवनमूल्य मानव जीवन के सर्वांगीण विकास की एक प्रक्रिया है ।किस प्रकार जीवन का उत्थान पतन होता है, किस प्रकार सफलता या असफलता प्राप्त होती है, किन साधनों से मानव को श्रेय और प्रेय की प्राप्ति होती है और किस प्रकार मानव भौतिक उन्नति के द्वारा सांसारिक सुखों का उपभोग करके अपवर्ग का पात्र होता है- इन सब विषयों का चिन्तन जीवन मूल्य आधारित शिक्षा में होता है ।मूल्यों पर आधारित व्यवहार दुर्गुणों, दुर्विचारों,दुर्भावों और दूषित तत्त्वों को हृदय से निकालकर उनके स्थान पर सद्गुणों, सद्विचारों, सद्भावों और सत्प्रवृत्तियों को बद्धमूल करती है । सभी ज्ञानराशि का मूल होने के कारण वैदिक मन्त्र इस सन्दर्भ में हमें यथोचित निर्देश देतें हैं । सुख एवं धर्म का आधार अर्थ है क्योंकि सुख का मूल धर्म है, धर्म का मूल अर्थ है और किसी भी राज्य अथवा शासन की नींव अर्थ पर आधारित होती है ।[1] धार्मिक कार्यों के सम्पादन में अन्य माध्यमों के अतिरिक्त धन की प्रमुख भूमिका होती है । अतएव वैदिक मन्त्रों में धन एवं श्रीवृद्धि की कामना की गयी है । वैदिक सामाजिक व्यवस्था के पाँच आधार स्तम्भ माने गये हैं – पञ्चमहायज्ञ, ऋणत्रय, वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था एवं पुरुषार्थचतुष्टय। यद्यपि समाज में अर्थप्राप्ति जीवन का एक उद्देश्य है परन्तु धन के उपभोग के लिए ऋण या दूसरे के परिश्रम का आश्रय लेना अनुचित माना गया है ।[2]वैदिक ऋषि अग्निरूप परमात्मन् से प्रार्थना करता है कि हम कभी भी वस्त्रहीनता, भूख-प्यास आदि से ग्रस्त न हों । जीवन में उत्साह, आनन्द और श्रीवृद्धि रहे ।[3]सामान्यतया मनुष्य अपने पिता की समस्त सम्पत्ति का उत्तराधिकारी है । उत्तराधिकारी का कर्त्तव्य है कि वह प्राप्त सम्पत्ति की सुरक्षा करे और इसकी वृद्धि करे । मनुष्य की शुभ वृत्तियाँ सम्पत्ति को सुरक्षित रखती हैं और बुरी वृत्तियाँ इन्हें नष्ट करती हैं । जहाँ शुभ वृत्तियाँ हैं, सद्विचार हैं और सत्कर्मनिष्ठता है वहाँ लक्ष्मी का निवास है । जहाँ अशुभ वृत्तियाँ हैं , पाप भावनाएँ हैं कुकर्मों में प्रवृत्ति है वहाँ लक्ष्मी का नाश हो जाता है ।इसलिए वेद का आदेश है कि पाप वृत्तियों को हटाओ, शुभ वृत्तियों को अपनाओ । इसप्रकार ही उत्तराधिकार प्राप्त सम्पत्ति की वृद्धि हो सकती है ।[4] अभीष्ठ धन कैसा हो? कौन सा धन अग्राह्य है ? किस धन के घर में आने से श्रीवृद्धि होती है ? इस सन्दर्भ में वेदमन्त्रों में प्रमुखतया दो प्रकार बताये गये हैं – शुभ लक्ष्मी एवं अशुभ लक्ष्मी । इनको स्मृति ग्रन्थों में शुक्ल धन एवं कृष्ण धन कहा गया है ।[5]स्वपुरुषार्थोपार्जित धन शुभ है । इसके विपरीत अन्याय, असत्य, कपट-व्यवहार आदि से प्राप्त धन अशुभ है । सज्जन पुरुष निकृष्ट उपायों से प्राप्त धन का तिरस्कार करते हैं ।[6]वेदमन्त्र शुभ लक्ष्मी को अपने पास रखने एवं अशुभ लक्ष्मी को दूर करने एवं नष्ट करने का परामर्श देते हैं ।[7] वेदों में धन और सुख की प्रायशः सकल कामनाएं बहुवचन में की गयी हैं । प्रचुर मात्रा में धन को प्राप्त करने का आग्रह किया गया है । व्यक्ति विशेष को देने एवं किसी अन्य को न देने की कामना न कर समाज में सबके सम्पन्न व प्रसन्न रहने की इच्छा व्यक्त की गयी है । सर्वसाधारण के लिए उपयुक्त ऐश्वर्य एवं भोजन की व्यवस्था शासन या समाज की सामूहिक जिम्मेदारी मानी गयी है।प्रकृति प्रदत्त ऐश्वर्य पर सबके उपभोग का अधिकार है।जिनके पास धन है उनको माँगने वाले को धन प्रदान कर प्रसन्न करनाचाहिए ।[8]

ऐश्वर्य के तीन प्रकार बताये गए हैं- अन्न समृद्धि,जन समृद्धि, एवं पशु समृद्धि। अथर्ववेद के मन्त्र में यज्ञोपवीत के तीन धागों को इन त्रिविध सम्पत्ति का सूचक बताया गया है । अन्न समृद्धि का तात्पर्य है मनुष्य के पास आजीवन अन्न का कष्ट नहीं होना चाहिए । पोषक अन्न शरीर को हृष्ट पुष्ट एवं निरोग रखता है । जन समृद्धि का भाव है अच्छी मानसिकता वाले परिजनों का परस्पर सहयोग एवं एकता ।इसी प्रकार पशु समृद्धि से अभिप्राय है – गौ, वृषभ आदि की प्रचुरता । अधिक दूध देने वाली गायें परिवार की श्रीवृद्धि करती हैं । सबके लिए दूध दही, मक्खन आदि पर्याप्त मात्रा में हों, यह पारिवारिक समृद्धि का सूचक है । मन्त्र में यह कामना की गयी है कि यज्ञोपवीत के साथ ये तीनों समृद्धियाँ साधक में निवास करें ।[9]ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए सन्मार्ग के रास्ते पर चलना प्रमुख साधन बताया गया है। यह दोषों को दूर करता है और श्री प्राप्ति को सुगम बनाता है।[10]निकृष्ट साधनों से भी धन की प्राप्ति होती है और अपेक्षाकृत कम समय में, परन्तु वह धन प्राप्ति सुखद और स्थायी नहीं होती है। इसके विपरीत सन्मार्ग और उत्तम साधनों से भी ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । यह मार्ग थोड़ा कठिन है, समय भी कुछ अधिक लगता है; परन्तु उत्तम साधनों से प्राप्त लक्ष्मी सुखद और स्थायी होती है ।यह निरन्तर बढती जाती है । अतः मन्त्र में यह प्रार्थना की गयी है कि हे ईश्वर, हमें ऐश्वर्य के लिए सन्मार्ग से ले चलिए। परमात्मा की कृपा से एवं मनोबल से पाप भावनाओं को नष्ट किया जा सकता है । सन्मार्ग पर चलने से दो लाभ हैं - शत्रुनाश एवं ऐश्वर्य प्राप्ति।[11]सन्मार्ग के दो विशेष तत्त्व बताये गए हैं। सन्मार्ग वह है जो हमें लक्ष्य तक ठीक से पहुँचावे । मानव जीवन का लक्ष्य है – सांसारिक सुख का भोग करते हुए मोक्ष की प्राप्ति। भोग और मोक्ष की प्राप्ति के लिए यह दृश्य संसार है।[12]इस संसार को इस प्रकार से भोगना चाहिए, जिससे भौतिक सुख भी प्राप्त हो सकें और मृत्यु के पश्चात् मोक्ष की भी प्राप्ति हो ।विषयों में अनासक्त रहकर कर्म करने से दोनों इष्ट प्राप्त होते हैं। सन्मार्ग का दूसरा तत्त्व है –निष्पाप होना। जिसमें पाप का मिश्रण हो वह शुभ मार्ग नहीं हो सकता है । हिंसा, क्रोध, द्वेष,ईर्ष्या,मद, मोह आदि से युक्त मार्ग कभी भी शुभ नहीं हो सकता है । अतः सुखद और निष्पाप मार्ग ही सदा अपनाना चाहिए । समाज की श्रीवृद्धि के लिए वेद दो प्रकार के कर्त्तव्यों का निर्देश करते हैं- एक स्थान पर एकत्र होकर सामूहिक निर्णय लेना एवं प्राकृतिक नियमों को न तोड़ना ।[13] समाज की उन्नति के लिए आवश्यक है कि समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति एक स्थान पर एकत्र हों और समाज की समस्याओं पर विचार करके सामूहिक निर्णय लें। 'सं जानते' के द्वारा निर्देश है कि इनमें सञ्ज्ञान हो, अर्थात् सद्भावना से एक निर्णय लें ।यह सामूहिक निर्णय सबके लिए मान्य हो । मन्त्र में यह संकेत है कि सामूहिक निर्णय के विरुद्ध कोई किसी प्रकार का कार्य न करे । यदि समाज के सामूहिक निर्णयों का कठोरता से पालन किया जाता है तो समाज अवश्यमेव प्रगतिशील और समृद्ध होगा। 'न मिनन्ति व्रतानि' के निर्देश से शिक्षित किया गया है कि समाज के प्राकृतिक नियमों को न तोड़ा जाय। समाज की अव्यवस्था और अवनति का कारण प्राकृतिक नियमों को तोड़ना ही है । यदि समृद्धि और आनन्द चाहिए तो प्राकृतिक नियम के अनुसार ही चलना होगा। दान के महत्त्व की चर्चा वैदिक मन्त्रों में भलीभांति प्रतिपादित है। दान का भाव है अपनी सम्पत्ति पर अपना स्वामित्व हटाकर दूसरे का अधिकार प्रतिष्ठित करना। दान समाज की व्यवस्था को पुष्ट करता है, धन के दोषों को दूर करता है, निर्धनों की सहायता करता है और उदारता की भावना को जागृत करता है । दान एवं त्याग दो ऐसे गुण हैं जिनसे सामाजिक आदर्शों को बल मिलता है । ऋग्वेद के दानसूक्त[14] एवं दक्षिणासूक्त[15]इसी प्रकार का परामर्श देते हैं । वेद धन की अस्थिरता और नाशवान रूप का वर्णन कर दान का आदेश करते हैं।[16] देवगण दान देने वाले को अचूक सम्पत्ति देते हैं और उनका कल्याण भी करते हैं ।[17] इसी प्रकार देवगण कृपणों से वैर भाव रखते हैं एवं उनके धन का नाश करते हैं ।[18] वेद का कथन है कि सौ हाथों से कमाना चाहिए और हजार हाथों से दान देना चाहिए।[19] वस्तुतः दान धन की सुरक्षा का एक अप्रत्यक्ष साधन है । अन्न, वस्त्र, पशु, सुवर्ण आदि का दान देने वाले दिव्य सुख प्राप्त करते हैं।[20] जो उदार दानी मुक्त हस्त से दान देता है और अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध है, वह

देवताओं के समान पूज्य है। महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है कि अन्न से ही सबका पालन-पोषण होता है अतः अन्नदाता प्राणदाता है ।[21] इसी प्रकार चाणक्य ने दानदाता को महावीर और महाशूर कहा है ।[22] दानी का यश स्थिर रहता है । वह अमर हो जाता है ।
उसकी कभी दुर्गति नहीं होती, सारा संसार उसे सुख देता है।[23]इसके अतिरिक्त दान का सबसे बड़ा लाभ आत्मशुद्धि है ।[24] महाभारत भी दान को धर्म का अंग बताता है ।[25] वैदिक परम्परा समाज में आर्थिक असन्तुलन को बढ़ावा देने वाले तत्त्वों के प्रति तिरस्कार की भावना रखने का सङ्केत करती है तथा समाज में फैले वैषम्य को दूर करने के लिए दान,दया,उपकार जैसे नैतिक भावों का समर्थन करती है।व्यवसाय एवं धन का एक अन्य आयाम कृषि है जो वस्तुतः सामान्य अर्थशास्त्र की एक शाखा है । कृषि एक उत्पादन कार्य है एवं सम्पन्नता का आधार स्तम्भ है। वेदों में कृषि को पुनीत व्यवसाय माना गया है और कृषि कर्म का आदेश देकर आत्मनिर्भरता के सिद्धान्त का उपदेश दिया गया है ।[26] अन्न प्राप्ति के लिए कृषि के महत्त्व को मानते हुए मनुष्य के निर्वाह का आधार स्तम्भ बताया गया है। [27] मनुष्य का बल और तेज अन्न पर ही निर्भर है अतः शत्रुओं के पराजय में कृषि को एक सशक्त माध्यममाना गया है ।[28]कृषि के महत्व को प्रतिपादित करते हुए राज्य में कृषि की व्यवस्था की जिम्मेदारी राजा को दी गयी है और निर्देश है कि राजा कृषि का विस्तार करे।[29] कृषिकर्म श्रमसाध्य होने के साथ-साथ देवाश्रित और अनिश्चित फल वाला भी है, अतः वेदों में कृषि की समृद्धि हेतु अनेक कामनाएं भी की गयी हैं।

संदर्भ ग्रन्थ :

[1]सुखस्य मूलं धर्मः ।धर्मस्य मूलमर्थः।अर्थस्य मूलं राज्यम् । **चाणक्यसूत्र 1-3**

[2] पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् । **ऋग्वेद 2.28.9**

[3]मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ।। **ऋग्वेद 7.1.19**

[4] एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः ।
तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ ।। **अथर्ववेद 7.115.3**

[5] न्यायागतोऽर्थः। तद्विपरीतोऽर्थाभासः। **चाणक्यसूत्र 156**

[6] अवमानागतम् ऐश्वर्यम् अवमन्यते साधुः । **चाणक्यसूत्र 160**

[7] एना एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव ।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम्।। **अथर्ववेद 7.115.4**

[8]पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्। **ऋग्वेद 10.117.5**

[9]त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ।। **अथर्ववेद 5.28.3**

[10] अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।। **ऋग्वेद 1.189.1,यजुर्वेद 5.36,7.43,40.16**

[11]प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणोति विन्दते वसु ।। **यजुर्वेद 4.29**

[12] **योगदर्शन 2.18**

[13]समान ऊर्वे अधिसंगतासः सं जानन्ते न यतन्ते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ।। **ऋग्वेद 7.76.5**

[14] द्रष्टव्य- ऋग्वेद 10.117

[15] द्रष्टव्य- ऋग्वेद 10.107

[16] (क) ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।। **ईशावास्योपनिषद् 01**
(ख) ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्राऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः । **ऋग्वेद 10.117.5**

[17] (क) सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद् दाशुषे हन्ति वृत्रम् । **ऋग्वेद 2.11.4**
(ख) यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। **ऋग्वेद 1.1.6**

[18]न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते । **ऋग्वेद 4.25.7**

[19]शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ।। **अथर्ववेद 3.24.5**

[20] उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थु र्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण।
हिरण्यदा अमृतत्त्वं भजन्ते वसोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः ।। **ऋग्वेद 10.107.2**

[21]अन्नात् प्राणः प्रभवति अन्नदः प्राणदो भवेत् । **महाभारत-शान्तिपर्व 18.28**

[22]अतिशूरो दानशूरः । **चाणक्यसूत्र 428**

[23]न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयु र्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः।
इदं यद् विश्वम् भुवनम् स्वश्चैतत्सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ।। **ऋग्वेद 10.107.8**

[24] इज्या धर्मस्य लक्षणम्। **महाभारत-शान्तिपर्व 36.10**

[25] यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् । **श्रीमद्भगवद्गीता 18.5**

[26]अक्षैर्मा दिव्यः कृषिमित्कृषस्व। **ऋग्वेद 10.34.13**

[27] ते कृषिं च शस्यं च मनुष्या३उपजीवन्ति । **अथर्ववेद 8.10.4.14**

[28] विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषि संशितोऽन्नतेजाः । कृषिमनु विक्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ।। **अथर्ववेद 10.5.34**

[29] नो राजा नि कृषिं तनोतु। **अथर्ववेद 3.12.4**

सहायक प्रोफेसर(संस्कृत),
मोदी विश्वविद्यालय,राजस्थान

मनोविज्ञान का वैदिक चिन्तन

✍ डा राकेश कुमार जैन

मनोविज्ञान का स्वरूप –मनोविज्ञान विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । विज्ञान के अन्य विभिन्न अंग भौतिक जगत् के तत्त्वों का विश्लेषण करते हैं अन्दर शरीर के-परन्तु मनोविज्ञान मानव , विद्यमान मनस् तत्त्व का चिन्तन मनन और विश्लेषण करता है । मनोविज्ञान को ,Psychology (साइकोलाजी)कहा जाता है । Psychology शब्द Psycho ग्रीक शब्द Psyche अर्थात् Spirit(आत्मा) , Mind मन) तथा)Logy ग्रीक शब्द Logia अर्थात् विज्ञान शब्दों के मेल से बनता है । इसका अर्थ है – मन का विज्ञान या मन की विभिन्न गतिविधियों का विज्ञान । मन के समस्त क्रियाकलाप का वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण इस विज्ञान का - विषय है । वेद और भारतीय दर्शनों में भी मन की इन विशेषताओं और क्रियाकलाप का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । मनो विज्ञान का सम्बन्ध दर्शन और विज्ञान दोनों विधाओं से है । मन और मन की विविध चेष्टाओं का विवेचन एवं विश्लषण यह दर्शन का विषय है । मन के विविध क्रिया कलाप का यन्त्रों के द्वारा सूक्ष्मतम निरीक्षण और परीक्षण तथा उन परीक्षणों के फलस्वरूप विविध निष्कर्ष निकालना आदि विज्ञान का विषय है। इस प्रकार मनोविज्ञान का दर्शनशास्त्र और विज्ञान दोनों विधाओं से सम्बन्ध है ।

मनोविज्ञान के विषय– वर्तमान मनोविज्ञान के अन्तर्गत सामान्यतया ये विषय लिए जाते हैं - स्नायु तन्त्र) Nervous System(, संवेदना(Sensation) प्रत्यक्षीकरण, (Perception)ध्यान या अवधान,(Attention) , सीखना(Learning)स्मरण,(Remembering)विस्मरण,(Forgetting),कल्पना(Imagination),चिन्तन(Thin king)अनुभूतिया,भाव(Feeling),संवेग(Emotion),प्रेरणा(Motivation)चेतना,(Consciousness)स्वप्न,(Dr eam)बुद्धि,(Intelligence)योग्यताएं,या क्षमता(Aptitude)व्यक्तित्व,(Personality)वंशानुक्रम एवं पर्यावरण , या वातावरण(Heredity and environment)विफलता ,(Frustration) आदि।

वैदिक वाङ्मय में मन का स्वरूप–ब्राह्मण ग्रन्थ में मन को संसार की सबसे बडी और महान् शक्ति ब्रह्म कहा गया है । [1]इसका अभिप्राय है कि मन सर्वोच्च सत्ता है और वही संसार का नियामक है। शतपथ ब्राह्मण में इसी बात को और स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि मन परम ब्रह्म है और संसार का सम्राट अर्थात् सर्वोच्च नियन्ता है । [2] मन को सृष्टि का कर्ता धर्ता बताते हुए [3]या है ।उसे ब्रह्मा कहा ग, इसी कर्तृत्व के आधार पर उसको प्रजापति या सृष्टि- [4]निर्माता कहा गया है ।मन को यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण में भरद्वाज ऋषि बताते हुए कहा गया है कि यह संसार का पालक है देने-अन्न,शक्ति,भरद्-पोषणकर्ता है (वाज , वाला[5]।(मन महान शक्ति है । मनन और चिन्तन मन का व्यापार है । कल्पना मन का कार्यक्षेत्र है ।

मनुष्य जैसी कल्पना करता है जैसा चिन्तन करता ,है वैसा ही स्वरूप हो जाता है ,। मन का ही व्यापार सुख- [6] दुःख और संसार कहा जाता है । इसीलिए मन को सर्वम् (सब कुछ) कहा गया है । मन की शक्तियां अनन्त हैं[7] अतः उसे अनन्त और अपरिमित कहा गया है ।, मन एक ज्योति है । वह दिव्य गुणों से युक्त है । वह मानव

शरीर में एक देवता की तरह प्रतिष्ठित है ,अतः उसे देव कहा गया है । [8]मन में प्रेरणाशक्ति हैवह मानव को कर्म , ह शक्ति और उत्साह का स्रोत है । वह आग्नेय तत्त्व है , उसमें अग्नि के गुण है, करने के लिए प्रेरित करता है। व [9] अतः उसे अग्नि कहा गया है । वह मानव का प्रेरक है । उसमें प्रेरणा देने की शक्ति है , अतः उसे सविता अर्थात् प्रेरक और सूर्य कहा गया है । [10]मन कल्पनाओं और शक्तियों का अनन्त भण्डार है वह अगाध और अथाह है , , [11]अतः उसे समुद्र कहा गया है ।मन कल्पनाओं और विचारों का भण्डार हैअतः उसे एक महानदी मानते हुए , वाणी को उसकी एक नहर कहा गया है,क्योंकि वाणी ही मन के विचारों को प्रकाशित और अभिव्यक्त करती है ।[12] ऐतरेय ब्राह्मण में मन को प्रजापति या ब्रह्म का एक विशिष्ट शरीर बताया गया है।[13] इसका अभिप्राय यह है कि मानव शरीर में मन ब्रह्म का प्रतिनिधि होकर शरीरधारी के रूप में प्रतिष्ठित है और वह सारे मानसिक व्यापारों का संचालन करता है।मन और वाणी का विशेष सम्बन्ध है । जो मन सोचता हैउसे वाणी प्रकट करती , । मन के भावों और विचारों को व्यक्त करने का एकमात्र साधन वाणी है । अत एव ताण्ड्यब्राह्मण में कहा गया है [14]है कि मन जो सोचता है , वाणी उस विचारों को व्यक्त करती है।शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि मन का प्राणों पर पूर्ण अधिकार है कहा जाता है । मन प्राणों को जो आदेश देता अतः उसे प्राणों का स्वामी याअधिपति , [15]है,उसी प्रकार प्राण चलते है। अर्थात् मन के आदेशानुसार ही स्नायुसंचार प्रणाली का -मण्डल और रक्त-संचालन होता है । शतपथ ब्राह्मण ने महत्त्वपूर्ण बात कही है कि मन में ही आत्मा प्रतिष्ठित है अर्थात् आत्मा के , [16] सब काम मन के द्वारा ही होते हैं । एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात कही है कि ज्ञानेन्द्रियों के सब काम मन के द्वारा ही किए जाते हैं । देखना सुनना, सूंघना आदि काम मन के द्वा ,रा ही होता है । इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण का काम मन करता है ।[17] अन्यमनस्क होने पर कहा जाता है कि मैंने यह बात नहीं सुनीमैंने यह वस्तु नहीं देखी ,इत्यादि , तत्त्वया कार्य मन के ही विभ। शतपथ ब्राह्मण में एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात् कही गई है कि ये सभी विभिन्न रूप हैं - काम(धी(ज्ञान(संकल्प,विचिकित्सा,श्रद्धा,अश्रद्धा,धृति,अधृति,ह्री(लज्जा,,भी[18]भय,आशंका) आदि ।)इसी प्रकार उपनिषदों में भी मन के गुणधर्मों का विस्तृत विवेचन मिलता है । बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है - [19]कि मन सम्राट है,वह परम ब्रह्म है।इसका अभिप्राय है कि मन महान शक्ति है । उसका संसार के सभी कार्यों परपूर्ण अधिकार है । मन प्रकाशक है[20] वह ज्योतिरूप है ।, वह ज्ञानरूपी ज्योति का दाता है अतःउसे ज्योति , स्वरूप है।मानव-कहा जाता है । वह ज्ञानरूपी ज्योति का दाता है,अतः उसे ज्योति कहा जाता है । मन चेतनाके चरित्रका निर्माण चेतना करती है।जैसी मन की प्रवृत्ति होती हैमनुष्य का स्वभाव और उसका व्यक्तित्व वैसा ही, [21]विकसित होता है । अतः उपनिषद् का कथन है कि मनुष्य मनोमय है । मनुष्य के मन का अध्ययन उसके व्यक्तित्व का अध्ययन है । उसकी इच्छाएँउसके संकल्प,उसके व्,यक्तित्व का निर्माण करते हैं । अतः उपनिषद् ने पुरुष को काममय या इच्छास्वरूप कहा है । [22]मन का स्वरूप चेतनता है । अतः शरीर में मन को आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।[23] मन में कर्तृत्व और निर्मातृत्व गुण हैंअतः वह आत्मा का प्रतिनिधि है।प्राणमय , शरीर सेे मनोमय शरीर सूक्ष्म है[24] अतःमनोमय शरीर को सूक्ष्म आत्मा बताया गया है।, यह सारी सृष्टि एक महान् यज्ञ है। इस सृष्टिरूपी यज्ञ में मन ही ब्रह्मा है । वही इस सृष्टिचक्र का निर्देशक और नियामक है ।[25] मन की अनन्त शक्तियाँ है[26]अतः उसे अनन्त कहा गया है ।, परमात्मा की प्राप्ति का साधन भी मन है ,कठोपनिषद् में कहा गया है कि मन से ही परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है । मन ही परमात्मा का साक्षात्कार करता है । [27]

वैदिक वाङ्मय में मनोविज्ञान के विषय –अथर्ववेद के एक मन्त्र में सूत्ररूप में मनोविज्ञान के सभी विषयों का संकलन है – मन्त्र है ,**मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये । मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ।।अथर्व.6/41/1** इस मन्त्र में मनसे चेतसे आदि आठ)8कर्मों का वर-विशेषणों से मन के स्वरूप और गुण (्णन है । इन आठ विशेषणों में मनोविज्ञान के प्रायः सभी विषय समाहित हो जाते हैं । इस मन्त्र में मनसे

क्र.सं.	मन्त्र	हिन्दी अर्थ	अभिप्रेत अर्थ	
1.	मनसे	मन या चिन्तन के लिये	संवेदना और प्रेरणा	Sensation&Motivation
2.	चेतसे	चेतना के लिए	चेतना और चिन्तन	Consciousness&Thinking
3.	धिये	धी के लिए	ध्यान या अवधान	Attention
4.	आकूतये	ज्ञान के लिए	अनुभूति और संवेग	Feeling & Emotion
5.	चित्तये	चित्त के कर्मों के लिए	स्मरण और विस्मरण	Remembering & Forgetting
6.	मत्यै	बुद्धि के लिए	बुद्धि	Intelligence
7.	श्रुताय	अध्ययन के लिए	श्रवण , पठन और शिक्षण	Learning
8.	चक्षसे	दर्शन के लिए	दर्शन या प्रत्यक्षीकरण	Perception

इस मन्त्र से ज्ञात होता है कि वैदिक ऋषियों ने किस प्रकार सूत्र रूप में मन्त्रों में विविध ज्ञान विज्ञान का वर्णन किया है ।

शिव संकल्प सूक्त में मनोवैज्ञानिक विषय –यजुर्वेद के वें अध्याय के प्रारम्भिक 6 मन्त्रों को शिवसंकल्प सूक्त 34 त्येक के अन्त मेंकहा जाता है । इसमें प्र**तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु)**मेरा मन शुभ विचारों से युक्त हो(यह सुभाषित दिया गया है। इन मन्त्रों में मन के विषय में अ**नेक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य दिए गए हैं।**

1. **मन दिव्य ज्योति है – यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति ।दूरं ज्योतिषां ज्योतिरेकं , तन्मे , .मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।यजु34/1**अर्थात् मन की गति अति तीव्र है यह बहुत दूर तक जाता है। यह न , अवस्था में भी उसी प्रकार दूर दूर तक जाता -केवल जागृत अवस्था में ही दूर तक जाता है , अपितु स्वप्न विज्ञान के सभी -तियों की ज्योति और प्रकाशों का प्रकाशक है । यह एक प्रकाश है जो ज्ञानहै । यह ज्यो तत्त्वों को प्रकाशित करता है । यह चेतना का आधार है ।
2. **मन मानव का प्रेरक है-** येन कर्माण्यपसो .यदपूर्वं यक्षमन्तः प्राजानां .....।। **यजु ... 34/2**अर्थात् मन प्रेरक तत्त्व है । यह विद्वानों आदि को यज्ञ एवं शास्त्रीय ज्ञान के लिए प्रवृत्त करता है। यह प्राणिमात्र के अन्दर विद्यमान एक पूज्य यक्ष है । इस मन्त्र में स्पष्ट किया गया है कि मन ही प्रेरणा का स्रोत है ।
3. **मन के तीन विशिष्ट गुण – यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च .यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यजु ,34/3**इस मन्त्र में तीन विशिष्ट गुणों का उल्लेख किया गया है। ये हैं – प्रज्ञानजानने की शक्ति)चेतस् (स्मरण)

करना)और धृति (धारणा शक्ति)। साथ ही यह भी कहा गया है कि मन प्राणिमात्र के अन्दर विद्यमान बिना कोई काम नहीं कर सकता है । एक अमर ज्योति है । इसके

4. **मन त्रिकालदर्शी है – येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृ ,हीतममृतेन सर्वम् । यजु .34/4**
   अर्थात् मन त्रिकालदर्शी है । वर्तमान भूत , और भविष्य तीनों काल इसकी सीमा में आते हैं ।मन से , विषय में चिन्तन और मनन कर सकता है । तीनों कालों का दर्शन होता है।मन तीनों कालों के
5. **मन ज्ञान का आधार है –यस्मिन् ऋचः साम यजूंषियस्मिन्.. चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम् .यजु ..34/5**
   अर्थात् मन में ही सारे वेद हैं । सारा ज्ञानविज्ञान और बुद्धि समाविष्ट है । मन में ही चित्त प्रजाशक्ति - विद्यमान है।
6. **मन का निवास हृदय में है – सुषारथिरश्वानिव.....वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं ।।.....**
   अर्थात् मन का निवास हृदय में है । इसकी गति अतितीव्र है और इसमें असाधारण कार्यक्षमता है । यह एक सुयोग्य सारथि है नियन्त्रित रखता है। जो इन्द्रियरूपी घोडों को ठीक ढंग से ,
7. **मन अमर है – समनसामर्त्येन ।अथर्व .7.5.3**अथर्ववेद में कहा गया है कि मन अमर है ,देवता भी अमर है । अतः हम अमर मन से अमर देवताओं के लिए यज्ञ करते हैं।
8. **मन दैवी शक्ति है – देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् । ऋग् .1.164.18** ऋग्वेद में कहा गया है कि मन देवता है दैवी शक्ति है । यह दैवी शक्ति कहां से उत्पन्न हुई है , यह विद्वान् ही बता सकते हैं ,।
9. मन की गति असीम है – ऋग्वेद और अथर्ववेद में बताया है कि मन की गति बहुत तीव्र है।इसकी कोई सीमा नहीं है।यह आशुमत् बहुत तीव्रगामी है। वह क्षण भर में कभी द्युलोककभी अन्तरिक्ष और कभी , पृथ्वी पर विचरण करता है । यह भी कहा गया है कि मन की गति बहुमुखी है।यह चारों ओर जहां चाहे वहां जाता है।
10. मन ज्ञान का अक्षय कोष है –**पतंगो वाचं मनसा बिभर्ति।ऋग् .10.177.2**समस्त ज्ञान और विज्ञान मन के अन्दर विद्यमान है।परमात्मा सारे ज्ञान के स्रोत वेदों को अपने मन में धारण किए हुए है।

मन की पवित्रता के वैदिक उपाय –वेदों में मन की पवित्रता पर बहुत बल दिया है और इससे सभी अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति तथा पापों को नष्ट करने का सर्वोत्तम साधन बताया गया है । ऋग्वेद के एक मन्त्र में बताया गया है कि बुद्धि के परिष्कार का उपाय है हृदय की सात्त्विकता या शुद्धता । हृदय की सात्त्विकता का उपाय है– शुद्ध भोजन [28]शुद्ध विचार और शुभ कर्म । ,यदि हृदय में शुद्धता है प्रेम , , – ममता और परोपकार की भावना है तो बुद्धि स्वयं सत्कर्मों की प्रवृत्त होगी । इसका फल होता है ज्ञान की वृद्धि ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि और सद्गुणों की ओर प्रवृत्ति । अथ-र्ववेद में कहा गया है कि मन को पवित्र रखने के लिए पाप के विचारों को एवं उनके कारणों को छोडना होगा । ऋग्वेद में पाप के पांच कारण बताए गये हैं – नियति (प्रारब्ध), सुरा (मदिरा), क्रोध द्युत(जुआ)और , अज्ञान ।साथ ही पाप को दूर करने के भी पाँच उपाय बताये गये हैं ईश्वर को सर्वव्यापक मानना , - [29] का ज्ञान होना , ईश्वरोपासना और मनोबल ।हृदय में साक्षीरूप में उसकी सत्ता अथर्ववेद में कहा गया है कि मन को दुर्गुणों की ओर जाने से रोकें । इसका उपाय बताया गया है कि अपने मन को आवश्यक कामों में लगाए रखें । उसे इधर उधर-भटकने का अवसर ही न दें । [30]पाप की भावना के

प्रमुख कारण हैं – अधिक धन की लिप्सा महत्त्वाकांक्षा, लोभ , तामसी प्रवृत्ति और कुसंगति । सत्संगति , और सद् ग्रन्थों के स्वाध्याय से ये प्रवृत्तियां सरलता से रोकी जा सकती है । यजुर्वेद और अथर्ववेद के एक मन्त्र मेंबताया गया है कि मन की पवित्रता से तेजस्विता नताओं की निरोगता , शारीरिक न्यू , पूर्ति और स्थायी ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।

संन्दर्भग्रन्थ---सूची-

1. गोपथब्राह्मणम् .1.2.10
2. शतपथब्राह्मणम् .14.6.10.15
3. गोपथब्राह्मणम् .1.2.10
4. तैत्तिरीयब्राह्मणम् 3.7.1.2
5. यजुर्वेदः 13.। शतपथब्राह्मणम् 8 55.1.1.9
6. गोपथब्राह्मणम् 1.5.15
7. शतपथब्रह्माणम् 14.6.1.11
8. गोपथब्राह्मणम् .1.2.11
9. शतपथब्राह्मणम् 10.1.2.3
10. शतपथब्राह्मणम् 6.3.1.13
11. शतपथब्राह्मणम् 7.5.2.52
12. जैमि .उप. ब्रा .1.58.3
13. ऐतरेयब्राह्मणम् 5.25
14. ताण्ड्यब्राह्मणम् 11.1.3
15. शतपथब्राह्मणम् 14.3.2.3
16. शतपथब्राह्मणम् 6.7.1.21
17. शतपथब्राह्मणम् 14.4.3.8
18. शतपथब्राह्मणम् 14.4.3.9
19. बृहदारण्यकोपनिषद् 4.1.6
20. बृहदारण्यकोपनिषद् 3.9.10
21. बृहदारण्यकोपनिषद् 5.6. .। तैत्ति.उप 11.6.1
22. बृहदारण्यकोपनिषद् 3.9. 11
23. बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.17
24. तैत्ति .उप .2.3
25. बृहदारण्यकोपनिषद् 3.1.6
26. बृहदारण्यकोपनिषद् 3.1.9
27. कठोपनिषद् 2.1.11
28. ऋग्वेदः 10 –.119.5
29. ऋग्वेदः 7 –.86. 6
30. अथर्ववेदः -6.45.1

प्राध्यापक ,

साहित्यविभाग रा.सं.सं ,मुम्बई

दिक् शोधन और शंकु

✍डॉ.राजीव कुमार मिश्र

दिशा के समीचीन ज्ञान के बिना भवन निर्माण सम्भव नही होता अत: भूमि की दिशा के ज्ञान हेतु शन्कु का प्रयोग वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में विस्तार से वर्णित है।इसके लिये उचित समय, भूमि को तैयार करना ,शन्कु निर्माण,शन्कु से पड़ने वाली छाया से पूर्व आदि दिशाओं का निर्धारण एवम् अपच्छाया का ज्ञान आवश्यक होता है। शन्कु कि स्थापना भवन निर्माण में प्रथम सोपान माना गया है। प्राचिन काल में दिशा ज्ञान के लिये आज की तरह दिक्सूचक साधन उपलब्ध नही था ।आज तो चुम्बकादि से निर्मित साधन सर्वत्र उपलब्ध हैं जिससे दिशा जॅज मे. कोई कठिनाई नहि होती ।प्रछिन काल में सूर्य को आधार बना कर दिशा का ज्ञान किया जाता था जिस स्थान पर भवन निर्मान कर्ना होता था वहा दिशा ज्ञान के लिये शन्कु कि स्थापना कि जाती थी शन्कु दिशा ज्ञान के लिये साधन विशेश का नाम है। जिसका अग्रभाग सुचि कि तरह नुकीला तथा मूल वृत्ताकार हो उस साधन को सन्कु कहते है।इसका लक्षण मयमतम् में इस प्रकार बताया है- एक हाथ लम्बा हो,शीर्ष पर इसका माप एक अन्गुल हो तथा मूल भाग में पांच अंगुल हो ।इसकि गोलाई सुन्दर हो ,यह कटा -फटा न हो एवम श्रेष्ठ हो-

अरत्निमात्रमायाममग्रमेकाङ्गुलं भवेत्। मूलं पञ्चाङ्गुलं व्यासं सुवृत्तं निर्व्रणं वरम्॥मयमतम् ६.४॥

मौलसिरी,चन्दन ,खैर ,कदर,शमी,सागौन तथा तेन्दु के काष्ठ से शंकु निर्माण करना चाहिए। शङ्कु निर्माण के पश्चात उत्तरायण मास में शुक्ल पक्ष में सूर्योदय होने पर शंकु स्थापित करना चाहिए |यथा-**उत्तरायणमासे तु शुक्लपक्षे शुभोदये ॥ प्रशस्तपक्षनक्षत्रे विमले सूर्य मण्डले | गृहीतवास्तुमध्ये तु समं कृत्वा भुवः स्थलम् ॥ जलेन दन्डमात्रेण समं तु च्तुरस्रकम् | तन्मध्ये स्थाप्येत् शङ्कुं .....॥मय.६.१-३॥** शङ्कु स्थापना के अनन्तर दिशा का ज्ञान करना चाहिए |शङ्कु प्रमाण के दुगुने माप के बराबर एक वृत्त बनाए |दिन के पूर्वाह्न एवं अपराह्न उस वृत्त के जिन जिन बिन्दुओं पर शंकु कि छाया पड़ती है उन बिन्दुओं को सूत्र से मिलाएं |इससे पूर्व व पश्चिम दिशा का ज्ञान होगा | पूर्वाह्न में जहाँ छाया पड़ती है वह पश्चिम दिशा एवं अपराह्न में जहां छाया पड़ती है वह पूर्व दिशा होती है | दोनों बिन्दुओं को केंद्र बनाकर मछली की आकृति बनानी चाहिए |

शङ्कुं कृत्वा दिनादौ तु स्थाप्येदात्तभूतले ॥ शङ्कुद्विगुणमानेन तन्मध्ये मण्डलं लिखेत् |
पुर्वापराह्णयोश्छाया यदि तन्मंडलान्तगा ॥ तद्विन्दुद्वयगं सूत्रं पुर्वापरदिशीष्यते |
बिन्दुद्व्यान्तरभ्रान्तशफराननपुच्छगम् ॥ दक्षिणोत्तरगं सूत्रमेव सुत्रद्वयं न्यसेत् |
उदगाद्यपरान्तानि पर्यन्तानि विनिक्षिपेत् ॥मय.६.७-१०॥

उस मत्स्य का मुख दक्षिण तथा पूंछ उत्तर दिशा में हो |इस प्रकार पुर्वपश्चिमस्थ बिंदु को केंद्रीकृत करके दो वृत्त का निर्माण किया जय तो दोनों साधारण प्रदेश मत्स्याकृति रूप में दिखती है |उससे दक्षिण तथा उत्तर दिशा का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है | यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि सूर्योदय व सूर्यास्त के समय शंकु कि छाया जहाँ वृत्त रेखा को स्पर्श करे वे ही दोनों स्थान पूर्व व पश्चिम दिशा का सूचक नहीं होगा, बल्कि जब सूर्य कन्या व वृष राशि में होगा उस स्थिति में शंकु कि छाया सीधे पूर्व व पश्चिम दिशा पर पड़ती है जो पूर्व व पश्चिम दिशा का सूचक होता है , न कि अन्य राशियों में |चूंकि सूर्य कि छाया बारहों महीने एक सामान नहीं होती अतः सूर्य के संक्रमण के अनुसार शुद्ध रूप से पूर्व व पश्चिम का निर्धारण करना चाहिये व अपच्छाया से बचना चाहिए |कन्या व वृष राशि में स्थित सूर्य कि अपच्छाया नहीं पड़ती | यथा- **कन्यायां वृषभे राशावपच्छायात्र नास्ति हि ॥मय.६.११॥** मेष ,मिथुन,सिंह एवं तुला राशि में सूर्य के रहने पर जहाँ शंकु कि छाया पड़े उससे दो अंगुल पीछे हटकर पूर्व व पश्चिम का निर्धारण करना चाहिये |जिस समय सूर्य कर्क ,वृश्चिक एवं मीन राशि पर हों ,उस समय चार अंगुल पीछे हटकर दिशा निर्धारण करना चाहिए | इसी प्रकार धनु एवं कुम्भ पर सूर्य के रहने पर छः अंगुल एवं मकर पर आठ अंगुल हटकर शंकु कि छाया के दायें व बाएं सूत्र का प्रयोग कर दिशा निर्धारित करनी चाहिये| **मेषे च मिथुने सिंहे तुलायां द्वयङ्गुलं नयेत् | कुलीरे वृश्चिके मत्स्ये शोधयेच्चतुरन्गुलम् ॥ धनुः कुम्भे षडङ्गुल्यं मकरे अष्टाङ्गुलं तथा | छायाया दक्षिणे वामे नीत्वा सूत्रं प्रचारयेत् ॥ मय.६.१२-१३॥**

दिशा ज्ञान के अनन्तर गृह निर्मान के समय प्रारंभ मे ही गृह के दक्षिण भाग में गर्भ विन्यास कर वही से सूत्रपात करनी चाहिये |उसके लिये आठ दण्ड लम्बा तथा ताल ,केतक, कपास ,कुश अथवा बरगद के छाल से निर्मित रज्जु का प्रयोग करना चाहिये |उस सूत्र से शङ्कु का मान लेते हुये शङ्कु को भूमि में निखातित कारना चाहिये | तथाहि-

गृहाणां दक्षिणे गर्भस्तत्पार्श्वे सुत्रपातनम् | अष्टयष्ट्यायता रज्जुस्तालकेतकवल्कलैः |
कार्पासपट्टसूत्रैश्च दर्भैर्न्य ग्रोधवल्कलैः ||मय.६.१४ |

नगर,ग्राम एवं दुर्ग के लिये सर्वप्रथम वायव्य कोण में सूत्रपात करना चाहिए | खात शंकु खदिर,खादिर,महुआ ,क्षीरणी तथा अन्य कठोर काष्ठ वाले वृक्ष से बनानी चाहिये |इसकी लम्बाई ग्यारह से लेकर इक्कीस अंगुल तक होनी चाहिये एवं व्यास एक मुठ्ठी तथा मूल सुई कि भांति नुकीला होना चाहिये |स्थपति पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर स्थापक की आज्ञा से बांयें हाथ में खातशंकु लेकर एवं दाहिने हाथ में हथौडा लेकर क्रमशः आठ बार शंकु पर प्रहार करे| तथाही-

एकादशा न्गुलद्येकविन्शन्मात्रं दैर्घ्यतः | पूर्णमुष्टिस्तु नाहं स्यान्मूलं सूचीनिभं भवेत् ||
गृहीत्वा वामहस्तेन प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः | दक्षिणेनाष्ठीलं गृह्य ताडयेदष्टभिः क्रमात् ||
प्रहारैः स्थपतिः प्राज्ञस्तत् कुर्यात् स्थापकाज्ञा ||मय.६.१७-१८५||

दिन में दिशा ज्ञान के लिए यही क्रम अपनाएं किन्तु रात्रि में तो सूर्य की छाया का अवलंबन शाक्य नहीं है |अतः रात्रि में दिशा ज्ञान के लिए ध्रुव नक्षत्र का अवलंबन किया जाता है| इसके अतिरिक्त कुंद विधि ,कुंद दर्पण विधिभी ग्रंथों में वर्णित हैं | परन्तु सूर्य कि छाया को अवलंबित करके जो दिशा ज्ञान करते हैं वही प्रशस्त माना जाता है | अथर्वज्योतिष में भी शंकु छाया को अवलम्बित करके पंद्रह मुहूर्त निश्चित किये गए हैं –

नवतिः षडाङ्गुलश्चैव प्रतीचीं तां प्रकाशयेत् | पुरस्तात्सन्धिवेलायां मुहूर्तो रौद्र उच्यते ||
श्वेतः षष्टिः समाख्यातो मित्रो वै द्वादशान्गुलः | षट्सु सार्भतो ज्ञेयः सावित्रः पञ्चसु स्मृतः ||
चतुर्षु चैव वैरजस्त्रिषु विश्वावसुस्तथा | मध्यान्हे चाभिजिन्नाम यस्मिन छाया प्रतिष्ठति ||
प्राचीं वै गामिनीं छायां रोहिणिस्त्रिषु वर्तते | बलश्चतुर्षु विख्यातो विजयः पञ्चसु स्मृतः ||
नैर्ऋतस्तु षडन्गुल्यो वारुणो द्वादशाङ्गुलः |सौम्यः षष्ठी समाख्यातः भगस्तु परमस्तथा ||
एते मुहूर्ता व्याख्याता दश द्वौ च थ त्रयः | अहन्येव तु विज्ञेया रात्रावपि ण संशयः ||(अथर्वज्योतिष ६-११)

प्रातः सूर्य जब दृष्टिगोचर हो तो द्वादश अंगुल दीर्घ शंकु भूमि में निखातित करना चाहिए| उस समय पश्चिम दिशा में ९०+६ =९६ अंगुल परिमाण शंकु कि छाया होती है | दोपहर में इसकी छाया कम हो जाती है |वह छाया जबतक साठ अंगुल हो तबतक रौद्र मुहूर्त होता है |साठ से तेरह तक श्वेत मुहूर्त ,बारह से सात मित्र,सात से छ सारभट ,छ से पांच सावित्र ,पांच से चार वैराज ,चार से तीन विश्वावसु , दो के बाद अभिजित | पश्चिम दिशा में जब सूर्य गमन करता है तो तीन अंगुल तक रोहिणी ,चार तक बल,पांच अंगुल तक विजय, छ अंगुल तक नैर्ऋत ,बारह अङ्गुल तक वारुण ,साठ अङ्गुल तक सौम्य ,उसके आगे सुर्यास्त तक भग होता है |

इस प्रकार भवन निर्माण के समय शङ्कु के द्वारा दिशा का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है |

संदर्भ ग्रन्थ :

- मयमतम् (अ.६)
- मानसार (अ.५६)
- अपराजितपृच्छा(६३)
- वास्तुराजवल्लभमन्डन (अ.१)
- अजितागम अ९
- मनुष्यालयचन्द्रिका २
- काश्यपशिल्प (अ.१)
- मण्डपकुण्डसिद्धि १
- अथर्वज्योतिष६-११,

प्राचार्य,स.स.महावि. शोध संस्थान, स. संस्कृत विश्व. वि., नई दिल्ली।

शक्तिपीठ – उग्रतारा महिषी, का वास्तुशास्त्रीय स्वरुप

✍ डॉ.आशीष कुमार चौधरी

अन्तकोटि ब्रमाण्डात्मक प्रपञ्च की अधिष्टानभूता सच्चिदानन्दरुपवती भगवती ही सम्पूर्ण विश्व को सत्ता स्फूर्ति तथा सरसता प्रदान करती है।सम्पूर्ण प्रपञ्च उन्हीं से उत्पन्न होता है उन्हीं में लीन हो जाता है। मिथिला प्रदेश उनकी जन्म स्थली के रूप में विश्व प्रसिद्ध है ।इसी कारण यहाँ की भूमि को ही शक्ति पीठ की संज्ञा दे दी जाती है। मिथिला में सहरसा जिला के महिषी ग्राम के धर्ममूला नदी के तट पर महामाया शती के भग्नावशेष का नेत्रांश गिरा था, उग्रतारा विद्या की महासिद्धि के पश्चात् हिमालय के तराई क्षेत्र में लाई गई यहीं वशिष्ठ **द्वारा** आराधित उग्रतारा देवी विद्यमान है – "**वशिष्ठराधिता तारा तत्र तारा शिलामयी**" । बिहार के सहरसा जिला के महिषी (Bon Gaon Mohishi) ग्राम के अग्निकोण में स्थित, इस देवस्थल पर **16वीं सदी** की अनुमानित काल की महिषी मूल की एक ब्राह्मण कन्या महारानी पद्मावती जो दरभंगा राजपरिवार की कुल वधू थीं, उनके **द्वारा** ही यह मन्दिर बनवाया गया था जो वर्तमान में भी अच्छी अवस्था में है।

लगभग 40 फीट ऊंचा मन्दिर स्थित है।मन्दिर में दो **द्वार** हैं, एक **41/2** फीट का पूर्वी **द्वार** जिसमें गर्भ-गृह में प्रवेश किया जाता है वहीं दूसरा जो **3फीट** का है, उससे निकलने की व्यवस्था है। मण्डप का ऊपरी शिरा त्रिकोणाकार है, जिसका मुख्य **द्वार 6फीट** का तथा उत्तरी एवं दक्षिणी **द्वार** क्रमशः **3 और 5फीट** का है। मन्दिर की वेदिका अद्भूत है स्वस्तिका - भद्रिका - पद्मिनी – श्रीधरी,ये चार प्रकार की वेदिका होती है ,यहाँ भद्रिका नामक जगती है।

प्रथमा चतुरश्रा स्यात् स भद्रा च द्वितीयका।
तृतीया श्रीधरी नाम चतुर्थी पद्मिनी स्मृता।। समरांगणसूत्रधार प्रथम भाग 47/2

कठिन दुःख से छुटकारा दिलाकर भव सागर से तारने वाली होने के कारण इन्हें उग्रतारा कही जाती है, कैवल्य दामिनी होने के कारण इनका नाम **एक जटा** तथा सरलतापूर्वक ज्ञान देने के कारण इन्हें **नील सरस्वती** के रुप में जाना जाता है, दशमहाविविद्या में **द्वितीय तारा** यह अपने यन्त्र पर सुप्रतिष्ठित होकर जनों के कल्याण में रत है। भारतीय प्रतीक विद्या में इनका इस प्रकार स्पष्ट किया गया है।

दक्षगेहे च योत्पन्न सती नाम्नेती कीर्तीता। कैवल्यदायिनी यस्मात् तस्मदेकजटा स्मृता।।

तारकत्वात् सदा तारा लीलयावाक्प्रदा यत । नीलसरस्वती प्रोक्ता उग्रत्वादुग्रतारणी ।।

नील-विशाल- पिंगल-जटाजुटैक-नागर्युत । उग्रतारा दर्शन पृष्ट-13

गर्भ-गृह के मध्य तारा प्रतिमा के बाएँ हाथ में एक नील कमल सुशोभित है। नील सरस्वती और एक जटा के अगल-बगल में **कमल-कली** विद्यमान है। तारा प्रतिमा के दाहिने भाग में नील सरस्वती बाएं भाग में जटा और शीर्ष भाग में अक्षोभ्य ऋषि की पद्मासन अवस्था में मूर्ति विद्यमान है, भगवती तारा देवी प्रत्यालीढ स्थित में शनरूपों के ऊपर दोनों पाँव रखकर खड़ी है।

दोपहर-कालीन मुखमण्डल युवती स्वरूपा एवं सायंकालीन मुखमण्डल वृद्धावस्था स्वरूपा, दर्शनभाव से मिलता है। उग्रतारा (महिषी) का भैरव-बटुक है, इसलिए इनकी पूजा क्रम में अन्नाद से हवन, कुमारी पूजन और बटुक

भोजन अनिवार्य है। श्री उग्रतारा का पञ्चाक्षरी मन्त्र – **ऊँ ह्रीं हूँ फट्** और बीज मन्त्र **स्त्रीं** है, इस प्रकार पूरा मन्त्र "**ऊँ ह्रीं स्त्रीं हूँ फट्** दिव्य एवं अत्यन्त पवित्र है। मन्दिर तारा यंत्र पर विद्यमान है।मध्य में त्रिकोण यंत्र है।

"त्रिकोणं भगमित्युक्तं वियत्स्य गुप्तमण्डलम्" मिश्र, जनार्दन - भारतीय प्रतीक विद्या, पृ.-228

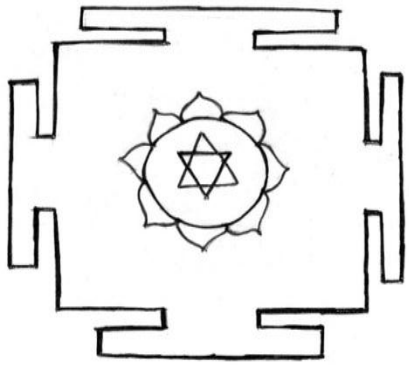

उग्रतारा यन्त्र

मन्दिर का प्रारम्भिक स्वरूप आयताकार है,मध्यभाग त्रिकोणाकार है तथा शिखर भाग गुम्बदाकार है। प्रांगण में दो बली यन्त्र हैं, एक **तीन फीट** का **छाग-बली** के लिए है। **द्वितीय 5फीट** का जो **महिष-बली** के लिए है। देवी के बली के लिए छः पशुओं का विधान है। तारा महाविद्या का **तारा-यन्त्र** प्राङ्गण में स्थित पीपल पेड़ के नीचे स्थापित हैस जिस पर नित्य यज्ञ, होम आदि होता ही रहता है। यहाँ कई प्राचीन शिलालेख भी विद्यमान अपठनीय है। **अमलसार*** पर कलश एवं त्रिशूल सुशोभित है। अमलसार का स्वरूप भी अद्वितीय एवं शास्त्रसम्मत ही है।जहाँ ध्वज स्तम्म भी विद्यमान है।विभीन्न ग्रन्थों में इसका स्वरूप इसप्रकार है-

क्षीरोदार्णवके पूर्वं मध्यमाने सूरासुरैः। तत्रोत्पन्न सुतिलकम् कलशः कामरूपिणम्।।कलानिधिः 9/2

अभिषिक्तो दिव्यघटैः फलपल्लवसंयुतैः। प्रासादास्याष्टमांशेन पृथत्वं कलाशाण्डतके।

षोडशांशैर्युतं श्रेष्ठं मध्यं द्वित्रिशदतः ।। तत्रैव 9/4,तत्रैव 9/10

स्कन्धकोशान्तरे सप्रमक्ते ग्रीवा तु भागतः। सार्धं आमलसारश्च पद्मच्छत्रं तु सार्धकम॥प्रासादमण्डनम्. 4/24

वंशोपयोपि कर्त्तवयोदृढदारूमयो । शिंशपः खदिरश्चैव अर्जुनो मधुकस्तथा।

सुवृत्तः सारदारूश्च ग्रंथिकोटरवर्जितः।। दीपार्णवः 9/97

नैऋत्यकोण में योगिराज कुटी है। इसके यहाँ कई अवशेष भी हैं इन अवशेषों में भगवान बुद्ध, सूर्य, वीर हनुमान के अतिरिक्त एक **ध्वजस्तम्भ** एवं एक प्राचीन चौखट कै टुकड़ा भी सम्मिलित है। इस ध्वजस्तम्भ की तरह चौखट का वह अवशेष देवी मन्दिर का है, जिसके नीचे के हिस्से मं समुना की मूर्ति उत्कीर्ण है, दर्शनीय मिथिला में भी

इसकी पुष्टी की जा चुकी है।**वृहत्संहिता** के अनुसार **द्वार** शाखाओं पर देवी-देवता, स्वास्तिक, लतापत्र आदि अतङ्कन करने का विधान हैं। प्राङ्गण में ही यहाँ छोटे-छोटे कई मन्दिर एवं पास में ही मन्दिर कुण्ड भी विद्यमान हैं। आठवी सदी में इस नगरी में "**मण्डन मिश्र**" और उनकी पत्नी विदुषी "भारती" हुई झी जिन्होंने **शङ्कराचार्य** से शास्त्रार्थ किया था, उनका निवास स्थल उग्रतारा पीठ के दाहिने भाग में था।

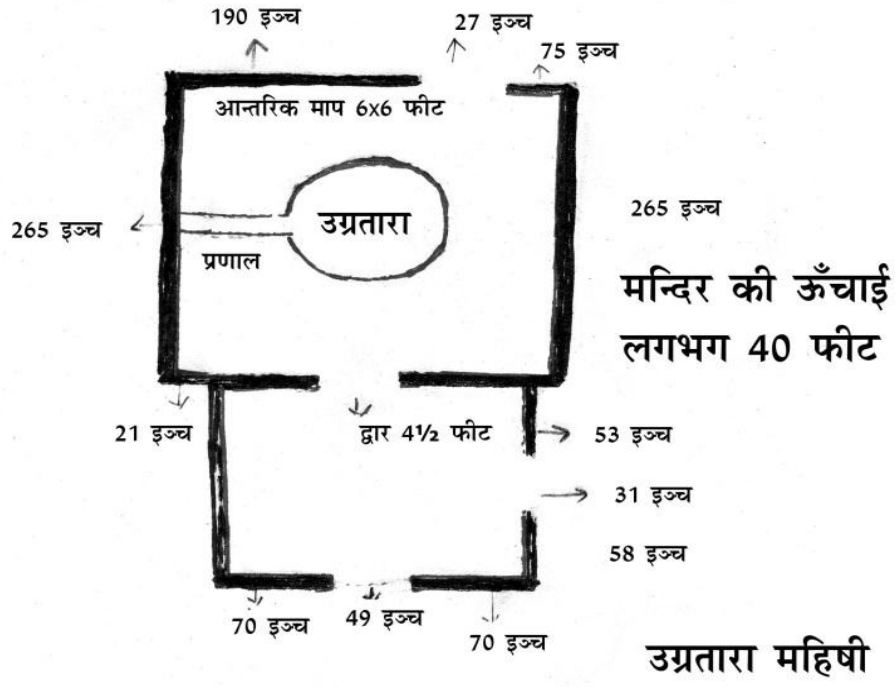

सन्दर्भसङ्केतः

1.समरांगणसूत्रधार प्रथम भाग 47/2
2 उग्रतारा दर्शन पृष्ठ-13
3.कलानिधिः 9/2, 9/4,9/10
4.प्रासादमण्डनम्. 4/24
5.दीपार्णवः 9/97
6. देवतामूर्त्तिप्रकरण, अध्याय 6-127, 150
7.तन्त्रालोक श्लोक 5,6, पृ. 570
8.डॉ वीणा चन्द्रकुमार कपूर; अपराजितपृच्छा प्रतिमा विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में, पृ. 39
9. शारदातिलकतन्त्रम्, प्रथम पटले
10.मन्त्रमहोदधिः. म., पृ. 17
11.कामकलाविलातन्त्रम् पृ. 30
12." मिश्र, जनार्दन - भारतीय प्रतीक विद्या, पृ.-228
13.वृहत्संहिता-56/14-15
14.अग्निपुराणम् 102/2

असि.प्रो.ज्योतिष विभाग
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,क.जे.सोमैया.सं.वि.

पाराशरी ज्योतिष में ग्रह दृष्टि-विचार

✍डा. प्रियंका जैन

भारतीय ऋषि-मुनियों ने अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा अनुसंधान के द्वारा काल की गति का बहुत ही सूक्ष्म विश्लेषण किया है। न केवल ऋग्वेद अपितु अथर्ववेद में भी काल की विभिन्न ईकाईयों और उनके स्वरूप पर बहुत ही विस्तार से चर्चा की गई है। काल के दुर्बोध और अगम्य स्वरूप को समझने के लिए ही ज्योतिषशास्त्र अस्तित्व में आया। जन्म-जन्मान्तर में किए गए शुभाशुभ कर्मों के आधार पर ही जीव मनुष्य योनि को प्राप्त करता है और होराशास्त्र के द्वारा इस विषय को अत्यन्त ही स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।[1] जन्मकालीन ग्रह-नक्षत्र तथा राशियों की आकाशीय स्थिति के आधार पर व्यक्ति विशेष के पूर्व-जन्म, वर्तमान-जन्म तथा मृत्यु के बाद की गति को फलित ज्योतिषशास्त्र द्वारा ही जाना जाता है। यही होराशास्त्र या फलित-ज्योतिष का मूल उद्देश्य है। जातक के जन्मकालीन ग्रह-नक्षत्रों-राशियों के मध्य सम्बन्धों के आधार पर ही फलादेश सम्भव हो पाता है। ज्योतिषशास्त्र के इस ज्ञान के विकास में अनेक ऋषि-मुनियों का योगदान है, परन्तु महर्षि पराशर प्रणीत फलित-ज्योतिष के सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन काल से ही दैवज्ञों के मध्य मार्गदर्शक के रूप में स्वीकृत रहे हैं। महर्षि पराशर ने अपने ग्रन्थों में ग्रहों की दृष्टि विषयक विवेचना को काफी महत्त्व प्रदान किया है। "लघुपाराशरी, मध्य-पाराशरी तथा वृहत् पाराशरहोराशास्त्रम्" महर्षि की रचनाओं के रूप में स्वीकृत हैं।

दृष्टि विषयक सिद्धांत- फलित ज्योतिषशास्त्र में दृष्टि सिद्धांत के अनुसार जातक के जन्माङ्ग के विभिन्न भावों में स्थित ग्रह विशेष परिस्थितियों में एक-दूसरे पर दृष्टिपात करते हैं। इस संदर्भ में महर्षि पराशर का मत है कि सूर्यादि नवग्रह अपने द्वारा अधिष्ठित भाव से सप्तमभाव में स्थित ग्रहों पर दृष्टिपात करते हैं और इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने अपने ग्रन्थ लघुपाराशरी में कहा है- "पश्यन्ति सप्तमं सर्वे...।"[2] अभिप्राय यह है कि यदि कोई ग्रह जन्माङ्ग के चतुर्थ भाव में स्थित है तो वह दशम भाव में स्थित ग्रह को पूर्ण दृष्टि से देखेगा। निम्नलिखित तालिका द्वारा ग्रहों के इस दृष्टि विषय सिद्धान्त को स्पष्टतया समझा जा सकता है और जाना जा सकता है कि किसी भाव विशेष में स्थित ग्रह की सप्तम दृष्टि किन भावों पर पड़ेगी-

ग्रह द्वारा अधिष्ठित भाव	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
दृश्य भाव	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6

ग्रह द्वारा अधिष्ठित भाव। ग्रह की दृष्टि इन भावों पर। महर्षि पराशर ने उपरोक्त सामान्य नियम का प्रतिपादन करने के बाद शनि, बृहस्पति तथा मङ्गल से संबंधित दृष्टि विषयक सिद्धान्त को प्रस्तुत करने के क्रम में कहा है **"...शनि-जीव-कुजाः पुनः। विशेषतश्च त्रिदश-त्रिकोण-चतुरष्टमान।।"** -वृ.प.हो. 27/41 अभिप्राय यह है कि शनि, गुरु और मङ्गल अपने द्वारा अधिष्ठित भाव से सप्तम भाव पर पूर्ण दृष्टि तो डालते ही हैं, साथ ही साथ कुछ अन्य भावों पर भी इनकी पूर्ण दृष्टि होती है। शनि स्व-अधिष्ठित भाव से सप्तम भाव के अतिरिक्त तृतीय तथा दशम भाव पर भी पूर्ण दृष्टि डालते हैं। बृहस्पति सप्तम भाव के अतिरिक्त पञ्चम और नवम भाव पर पूर्ण दृष्टिपात करते हैं। इसी प्रकार मङ्गल सप्तम भाव के अतिरिक्त चतुर्थ और अष्टम भाव पर भी पूर्ण दृष्टि रखते हैं। इन ग्रहों के दृष्टि विषयक विवेचना के सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि ये समस्त ग्रह अपने अधिष्ठित भाव से ही तत्तत् भावों पर दृष्टिपात करते हैं। अधोलिखित तालिका उपरोक्त विषय को सहज ही स्पष्ट कर सकता है- ग्रहों की उपरोक्त पूर्ण दृष्टि के अतिरिक्त पाद दृष्टि के सम्बन्ध में भी महर्षि पराशर ने अपने विचार "बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्" नामक ग्रन्थ में व्यक्त किए हैं।[3] इनके अनुसार प्रत्येक ग्रह अपने द्वारा अधिष्ठित राशि से तृतीय तथा दशम भाव का एक चरण अथवा एक पाद दृष्टि से अवलोकन करते हैं। इसी प्रकार स्वयं द्वारा अधिष्ठित राशि से पञ्चम तथा नवम स्थान पर दो चरण दृष्टि डालते हैं तथा चतुर्थ और अष्टम भाव पर त्रिपाद दृष्टि डालते हैं।

ग्रह द्वारा अधिष्ठित भाव	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
मंगल द्वारा दृश्य भाव	4,7,8	5,8,9	6,9,10	7,10,11	8,11,12	9,12,1	10,1,2	11,2,3	12,3,4	1,4,5	2,5,6	3,6,7
शनि द्वारा दृश्य भाव	3,7,10	4,8,11	5,9,12	6,10,1	7,11,2	8,12,3	9,1,4	10,2,5	11,3,6	12,4,7	1,5,8	2,6,9
गुरु द्वारा दृश्य भाव	5,7,9	6,8,10	7,9,11	8,10,12	9,11,1	10,12,2	11,1,3	12,2,4	1,3,5	2,4,6	3,5,7	4,6,8

दृष्टिबल साधन- महर्षि पराशर ने ग्रहों की दृष्टिबल साधन विषय पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। उन्होंने द्रष्टा ग्रह और दृश्य भाव स्पष्ट द्वारा ग्रह विशेष के बल साधन की विधि प्रस्तुत की है।[4] इस विधि पर चर्चा करने से पूर्व आवश्यक है कि हम जाने लें कि जो ग्रह देखता है उसे 'द्रष्टा' कहते हैं और जिसे देखा जाता है, उसे 'दृश्य' कहते हैं। द्रष्टा ग्रह स्पष्ट को दृश्य स्पष्ट में से घटा लेना चाहिए, यदि शेष छः राशि से अधिक हो तो उसे 10 राशि में घटाकर शेष को अंशात्मक बना लें, उसमें दो से भाग दें, जो लब्धि आए वही स्पष्ट दृष्टि होती है। इसी प्रकार द्रष्टा तथा दृश्य का अन्तर 5 राशि से अधिक हो तो राशि का त्याग कर केवल अंशादि को 2 से गुणा करें, प्राप्त लब्धि स्पष्ट दृष्टि होती है। अन्तर यदि 4 राशि से अधिक हो तो 5 राशि में घटाकर शेष दृष्टि होती है। द्रष्टा तथा दृश्य का अन्तर 3 राशि से अधिक हो तो 4 राशि में घटाकर 2 का भाग देकर 30 जोड़े, लब्धि स्पष्ट दृष्टि है। इसी विधि का आश्रय लेते हुए द्रष्टा तथा दृश्यान्तर 2 राशि से अधिक हो तो राशि को छोड़ देना चाहिए तथा केवल अंशादि में 15 जोड़ने पर स्पष्ट दृष्टि होती है। द्रष्टा तथा दृश्यान्तर 1 राशि से अधिक होने पर राशि का त्याग करें तथा अंशादि में 2 से भाग दें प्राप्त लब्धि स्पष्ट दृष्टि होती है। जिस प्रकार शनि, मङ्गल तथा बृहस्पति की पूर्ण दृष्टि विषयक सिद्धान्त में कुछ भेद है, उसी प्रकार दृष्टि साधन की विधि में भी इन तीन ग्रहों के सम्बन्ध में कुछ विशेष नियमों का प्रावधान महर्षि पराशर ने किया है। शनि के सन्दर्भ में उन्होंने कहा है कि यदि शनि और दृश्य का अन्तर करने पर राशि स्थान में एक हो तो भुक्तांश को दो से गुणा करने पर स्पष्ट दृष्टि होती है, इसी प्रकार 9 राशि शेष होने पर भोग्यांश को द्विगुणित करने पर स्पष्ट दृष्टि होती है। यदि अन्तर दो राशि हो तो भुक्तांश को 2 से भाग देकर 60 घटाने पर स्पष्ट दृष्टि प्राप्त होती है। इसी प्रकार शनि तथा दृश्य का अन्तर 8 राशि हो तो भुक्तांश को 30 में जोड़ने पर स्पष्ट दृष्टि प्राप्त होती है। बृहस्पति के सन्दर्भ में महर्षि पराशर का कथन है कि गुरु तथा दृश्य का अन्तर यदि 3 अथवा 7 राशि रहे तो भुक्तांशों को आधा करें तथा 45 जोड़े, प्राप्त लब्धि दृष्टि स्पष्ट है। यदि गुरु व दृश्य का अन्तर 4 या 8 राशि हो तो भुक्तांशों को 60 में घटाएँ लब्धि स्पष्ट दृष्टि होगी। शनि तथा बृहस्पति के समान ही मङ्गल के दृष्टि स्पष्ट के सन्दर्भ में विशेष प्रावधान करते हुए महर्षि पराशर का कथन है कि मङ्गल को दृश्य में घटाने पर राशि स्थान में 3 अथवा 7 हो तो भुक्तांश को 60 में घटाने से दृष्टि स्पष्ट मिलता है जबकि अन्तर 2 हो तो भुक्तांश को डेढ़ गुणा करके 15 जोड़ दें तो स्पष्ट दृष्टि मिलती है साथ ही अन्तर 6 राशि हो तो पूर्ण बल होता है। उपरोक्त सूक्ष्म गणितीय क्रियाओं द्वारा महर्षि पराशर ने ग्रहों की दृष्टि का बल निर्धारण किया है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र के फलित शाखा का विकास मुख्यतया महर्षि पराशर के सिद्धान्तों के आधार पर ही हुआ है। महर्षि पराशर प्रोक्त सिद्धान्तों का परीक्षण तथा उनका विकास परवर्ती विद्वानों ने भी किया है। ग्रहों की दृष्टि विषयक परिचर्चा का विकास अन्य ग्रन्थों में भी हुआ है। जन्मकुण्डली के विभिन्न भावों का अपना पृथक् शुभाशुभत्व होता है। कुण्डली के विभिन्न भावों यथा त्रिकोण, केन्द्र आदि भावों में स्थित ग्रह के दृष्टिफल में भी अन्तर होता है। 'कृष्णीयम्' ग्रन्थ में कहा गया है- "दर्शनफलमपि दद्युः त्रिकोणसप्तमचतुर्थदशमगताः।

अर्धाफलं सम्पूर्ण पादोन पादमन्यत्र।।"[5] अर्थात् त्रिकोणभाव में स्थित ग्रह अपने दृष्टिफल का 50%, सप्तमस्थ ग्रह 100%, चतुर्थ भावस्थ ग्रह 75% तथा दशमस्थ ग्रह 25% फल ही प्रदान करता है। महर्षि नारद ने भी ग्रहों की दृष्टि हो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना है और कहा है कि अशुभफलदायक ग्रह भी शुभग्रहों की दृष्टि से शुभद हो जाते हैं जबकि पापग्रहों से दृष्ट तथा शत्रु ग्रहों से दृष्ट ग्रह शुभफलदायक होने पर भी अशुभ हो जाते हैं। सौम्येक्षितो नेष्टफलः शुभदः पापवीक्षितः। निष्फला तौ ग्रहौ चोभौ शत्रुणा च विलोकितौ।[6] राहु तथा केतु की दृष्टि के सम्बन्ध में विशेष नियम बताया गया है, इसके अनुसार ये दोनों ग्रह अपने द्वारा अधिष्ठित भावों से पञ्चम तथा सप्तम भाव पर पूर्ण दृष्टि से देखते हैं, तीसरे तथा छठे भाव को एक पाद दृष्टि से देखते हैं। द्वितीय तथा दशम भाव का द्विपाद दृष्टि से अवलोकन करते हैं जबकि अपने घर को त्रिपाद दृष्टि से देखते हैं। सुते सप्तमे पूर्णदृष्टिं तमस्य तृतीये रिपौ पाददृष्टिर्निगतांतम्। धने राज्यगेहार्धदृष्टिं वदन्ति स्वगेहे त्रिपादं तथा चैव केतोः।।[7] ग्रहों की चरणवृद्धि दृष्टि विषयक सिद्धान्त के अतिरिक्त इन्हीं ग्रहों की दृष्टियों का उफध्व और समदृष्टि आदि भेद भी किया गया है। सूर्य तथा मङ्गल की उफध्वदृष्टि होती है, शुक्र व बुध कटाक्ष दृष्टि से देखते हैं, चन्द्रमा और बृहस्पति समभाग अर्थात् बराबर दृष्टि करके देखते हैं तथा राहु व शनि नीची दृष्टि से देखते हैं। अथोउध्वदृष्टि दिननाथभौमौ दृष्टिः काटाक्षेण कवीन्दुसून्वोः। शशाङ्कगुर्वोः समभागदृष्टिस्त्वधोक्षिपातस्त्वहि- नाथशन्योः।[8] त्रिदशे च त्रिकोणे च चतुरस्रे च सप्तमे। पादवृद्धया प्रपश्यन्ति प्रयच्छन्ति फलं तथा।। अभिप्राय यह है कि महर्षि पराशर प्रणीत ग्रहों की दृष्टि विषयक सिद्धान्तों के आलोक में परवर्ती आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में इस सिद्धान्त को और अधिक विकसित किया है। ग्रहों की दृष्टि जन्माङ्ग में उपस्थित विभिन्न ग्रहों को उनके शुभाशुभत्व तथा फल देने की प्रवृत्ति को सीधे-सीधे प्रभावित करता है। यही कारण है कि इन ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सौम्य ग्रहों तथा भावेशों द्वारा दृष्ट भाव के फलों में वृद्धि होती है, जबकि पापी व शत्रु ग्रहों से दृष्ट भावों से सम्बन्धित फलों में न्यूनता आती है।[9] अतः फलित ज्योतिषशास्त्र के अध्येताओं के लिए यह अनिवार्य तथा नितान्त आवश्यक है कि ग्रहों की दृष्टि तथा उनके बल-निर्धारण की अवहेलना किसी भी रूप में नहीं हो, अन्यथा फलादेश की सटीकता पर निश्चय ही नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। ग्रहों की दृष्टि व अनेक बल निर्धारण के क्षेत्र में महर्षि पराशर के सिद्धान्त आज भी अकाट्य और प्रासङ्गिक है।

संदर्भ

1. सारावली; 2/1
2. लघुपाराशरी; 1/5
3. वृहत्पराशरहोराशास्त्रम्; 27/3-4
4. वही; 27/6-13
5. कृष्णीयम्; 3/4
6. नारदसंहिता; 12/10
7. ज्योतिषश्यामसंग्रह; 12/33
8. सर्वार्थचिंतामणि; 1/91
9. षट्पञ्चाशिका; 1/3

पीएच.डी. (संस्कृत/ज्योतिष) ,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास

✍ डॉ रंजय कुमार सिंह

सांस्कृतिक इतिहास के दृष्टिकोण से प्राचीन भारतीय सभ्यता में भाषा, साहित्य, कला, वास्तुकला और विज्ञान के क्षेत्र में बड़ी उपलब्धियाँ हुई। विश्व के अन्य देशों से भी भारत के घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गए थे। भारतीय व्यापारी लोग मेसोपोटामिया के नगरों तक पहुँचे जहाँ ईसा पूर्व २४०० से ईसा पूर्व १७०० के बीच व्यापारियों की मुहरें पाई गई है। भारत ने पडोसी देशों में धर्मप्रचारक, विजेता और व्यापारी भेजे, जिन्होंने वहाँ बस्तियाँ बनाई। सुवर्णभूमि और सुवर्णदीप स्वयं सूचित करते हैं कि भारतीय वहाँ सोने की खोज में गये थे।

भाषा-साहित्य-आर्य-द्रविड, संस्कृत, वैदिक संस्कृत- भारत में आजकल बोली जाने वाली भाषाओं में से अधिकतर अपने मूल रूप में प्राचीन काल में विद्यमान थी। उनको दो भागों में बाँटा जा सकता हैं – भारतीय आर्य भाषाएँ और द्रविड भाषाएँ। प्राचीन आर्यों की भाषाएँ संस्कृत थी। संस्कृत साहित्य की भाषा वैदिक संस्कृत से भिन्न है। संस्कृत के अलावा भी अनेकों भाषाओं का विकास हुआ । जिन्हें प्राकृत कहते हैं । संस्कृत की अपेक्षा इनका व्याकरण और ध्वनि अधिक सरल थी।पाली, मागधी, शौरसेनी, प्राकृत के विभिन्न रूप थे जो विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती थी। प्राचीन संस्कृत साहित्य वेद, उपनिषद और ब्राह्मण ग्रन्थों के रूप में मिलता है इनको मौखिक रूप से ही याद किया जाता था और दूसरों को पढाया जाता था । बौद्ध और जैन धर्म के प्रादुर्भाव के पश्चात् प्राकृत भाषाओं की स्थिति में परिवर्तन हुआ । साधारण मनुष्य और स्त्रियाँ शौर सेनी और अन्य प्राकृत बोलियाँ बोलते थे । अधिकांश बौद्ध साहित्य पाली में था । बाद में कुछ बौद्ध ग्रन्थ भी संस्कृत में ही लिखे गए । शिलाखण्डों के अतिरिक्त ताम्रपत्रों पर भी अभिलेख लिखे गए।

वास्तुकलाएँ -हडप्पा संस्कृति के विनाश के पश्चात् लगभग एक हजार वर्ष तक भारतीय वास्तुकला तथा अन्य कलाओं में कोई प्रगति नहीं हुई। वस्तुतः हडप्पा के लोगों की उपलब्धियों को बिल्कुल भुला दिया गया। इस काल का न कोई सुव्यवस्थित मकान, न नगर और न ही मूर्ति मिली है। चौथी शती ई. पू. के अन्तिम चरण में मौर्यकाल में कला के क्षेत्र में कुछ प्रगति हुई। अशोक के समय बौद्ध वास्तुकला का विकास प्रारम्भ हुआ। बौद्ध वास्तुकला के सुन्दर उदाहरण चैत्य और विहारों में बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। अशोक स्तम्भों के सुन्दर शीर्ष इस काल की मूर्तिकला के उत्तम उदाहरण हैं। मौर्य काल के पश्चात् बुद्ध या उनके शिष्यों के अवशेषों पर स्तूपों का निर्माण हुआ। अनेक चट्टानों को काटकर गुफाओं में भी चैत्य बनाए गए । इसी कालके अन्त में अजंता की गुफाओं के प्रारम्भिक भित्ति चित्रों का निर्माण हुआ । मौर्य काल के बाद कला की गंधार और मधुरा शैलियों का विकास हुआ । गंधार शैली में यूनानी और रोमन मूर्तिकला का प्रभाव बिल्कुल स्पष्ट है। मधुरा शैली ने एक देशी रूप विकसित किया । गांधार मधुरा दोनों की कला में बुद्ध की मूर्तियाँ बनाई गई और बौद्ध विषयों का निरुपण किया गया । सातवाहन राजाओं ने भी चैत्यों और विहारों के निर्माणकार्य को प्रोत्साहन दिया अमरावती में एक स्तूप बनाया गया। । हिन्दु मन्दिरों के गर्भगृहों में देवता की मूर्ति प्रतिस्थापित की जाती थी। अधिकतर मन्दिर पत्थर से बनाए जाते थे और उनमें एक कि कोठरी होती थी जिसमें देवता की मूर्ति प्रतिस्थापित की जाती थी।

प्राचीन विज्ञान का विकास- प्राचीन भारत की विभिन्न चिन्तनधाराओं में ब्रह्मांड को चार या पाँच तत्त्वों पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल और आकाश में बाँटा गया है।यज्ञ के लिए शुभ दिन और समय ज्ञात करने की आवश्यकता ने भारतीयों को ज्योतिष सिद्धान्त की प्रेरणा दी। लगभग १००० वर्ष से भी अधिक के पश्चात् अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गए। इन ग्रन्थों में दिन का ठीक-ठीक मान निकालने और ग्रहण का हिसाब लगाने की ठीक विधियाँ बतलाई गई है। प्राचीन भारत के दो महान् ज्योतिषशास्त्री थे –आर्यभट्ट और वराहमिहिर। राशिचक्र सम्बन्धी विज्ञान का भी विकास किया गया और त्रिकोणमिति का उपयोग ज्योतिष के अध्ययन में किया गया। गणित का प्रारम्भिक उल्लेख हमें वैदिक साहित्य में मिलता है। वैदिक काल में वेदियाँ बनाने की आवश्यकता हुई। इस प्रकार रेखागणित की नींव पड़ी। धीरे-धीरे गणित का विकास हुआ। भारतीयों ने ज्ञान के इस क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है – जैसे अंको की दशमलव प्रणाली, उनका स्थानीयमान और शून्य का ज्ञान। किन्तु यज्ञों के लिए वेदी निर्माण के नियम जिन ग्रन्थों में दिए गए हैं, उन्हें शुल्व सूत्र कहते हैं। जिससे ज्ञात होता है कि इनके लेखक पाइथागोरस के प्रमेय और वर्गों के दुगना करने के सिद्धान्त से भली-भाँति

परिचित थे। भारत के गणितज्ञ २ के वर्गमूल का मूल्य ठीक-ठीक निकाल सकते थे। गुप्तकाल से शताब्दियों पूर्व भारतीय गणित की दो शाखाएँ पट्टिगणित (अंकगणित) और बीजगणित थीं। दशमलव प्रणाली और अंको के स्थानीय मान का प्रयोग किया जाता था। अथर्ववेद में पर्याप्त रूप से रोगों का लक्षण और रोगों का वर्णन मिलता है। शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रगति हो गई थी और अनेक कठिन रोगों में शल्य-क्रिया की जाती थी।

सांस्कृतिक विकास -छठीं-सातवीं सदियों के आसपास देशों में कई सांस्कृतिक इकाइयों का उदय हुआ जो बाद में असम, आन्ध्र, उड़ीसा, कर्नाटक, गुजरात, तमिलनाडु, बंगाल, महाराष्ट्र, राजस्थान आदि नामों से प्रसिद्ध हुई।आठवीं सदी के उत्तरार्ध में रचित कई जैन ग्रन्थों में १८ प्रमुख जनगणों अथवा उपराष्ट्रीय समूहों की चर्चा है। इसमें सोलह के शारीरिक लक्षण भी वर्णित है, उनकी भाषा के नमूने दिए हुए हैं और उनके चरित्रों के बारे में भी कुछ बातें कहीं गई है। नौवीं सदी का नाटककार विशाखादत्त कहता है कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न आचार व्यवहार, वेश-भूषा और भाषा वाले लोग बसते हैं।छठी-सातवीं सदियों संस्कृत साहित्य के इतिहास में भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। शासक वर्ग ईसा की दूसरी सदी से ही संस्कृत का प्रयोग करते आ रहे थे। गद्य में शब्दाडम्बर कि पराकाष्ठा बाण की कृतियों में देखी जाती है। यद्यपि बाण की गद्य-शैली का अनुकरण करना सरल नहीं था, फिर भी मध्य काल के संस्कृत लेखकों ने उसी को अपना आदर्श बनाया।पत्थर और काँसा ये दो ऐसे माध्यम थे जिनके सहारे देवता साकार किए गए।

वर्ण व्यवस्था – कर्तव्य और वंश के आधार पर- भारत में वर्ण सम्बन्धी नियमों को राज्य और धर्म दोनों का समर्थन प्राप्त था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के कर्त्तव्य तो विधि द्वारा सुपरिसीमित किए हुए थे, और ऐसा विश्वास प्रचलित था कि यह वर्णव्यवस्था दैवी शक्ति द्वारा निश्चित की गई है। जो कोई अपने निर्धारित कर्त्तव्यों से च्युत होता था और अपराधी पाया जाता था उसे लौकिक दण्ड तो भोगना ही पडता था, साथ साथ प्रायश्चित अर्थात् धार्मिक शुद्धि भी करनी पड़ती थी और ये दण्ड अपराधी के वर्ण के अनुसार भिन्न-भिन्न कोटि के होते थे। हर वर्ण की न केवल सामाजिक पहचान, बल्कि अनुष्ठानिक पहचान भी थी। किन्तु धीरे-धीरे कालान्तर में यह वर्णव्यवस्था जातिगत व्यवस्था बन गई। जो कि एक जाति – दूसरे जाति के खिलाफ और ऊँच-नीच का भेद-भाव बन गया।

शिल्प और प्रौद्योगिकी–ईस्पात- भारतीय शिल्पी रंगाई करने तथा तरह-तरह के रंग बनाने में परम दक्ष थे। भारत में बनाए गए मूल रंग इतने चमकीले और पक्के होते थे कि अजंता और एलोरा के मोहक चित्र आज भी उसी प्रकार हैं। इसी तरह भारत के लोग ईस्पात बनाने में भी परम कुशल थे। इस्पात बनाने की कला सबसे पहले भारत में ही विकसित हुई। भारतीय ईस्पात का अन्य देशों में निर्यात प्राचीन काल में होने लगा और बाद में आकर वह उत्स कहलाने लगा। विश्व का कोई अन्य देश ईस्पात की जैसी तलवारें नहीं बना सकता था जैसी भारतीय शिल्पी बनाते थे। पूर्वी एशिया से लेकर पूर्वी यूरोप तक इन तलवारों की भारी माँग थी।

राजतंत्र – प्रशासन- कौटिल्य के अर्थशास्त्र से इस बात में कोई शंका नहीं रह गई कि भारत के लोग विशाल साम्राज्य का प्रशासन चला सकते थे और जटिल समाज की समस्याओं को हल कर सकते थे। देश ने अशोक के रूप में महान् शासक पैदा किया, जिसने कलिंग पर शानदार विजय पाकर भी शान्ति और अनाक्रमण कि नीति अपनाई। अशोक और कई अन्य राजाओं ने धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया। यूनान के अलावा भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ किसी न किसी प्रकार के गणतंत्र का प्रयोग परीक्षण किया गया हो।

आयुर्विज्ञान – रोगों का वर्णन- प्राचीन भारत में वेदों के आधार पर विद्वानों ने शरीर-रचना विज्ञान का अध्ययन किया। उन्होंने रोगों के निदान की विधियाँ बनाई और इलाज के लिए औषधि बताई। औषधों का उल्लेख सबसे पहले अथर्ववेद में मिलता है। परन्तु अन्य प्राचीन समाजों की भाँति बताए गए उपचारों में जादू-टोना और तंत्र-मंत्र भी भर गए और आयुर्विज्ञान का विकास वैज्ञानिक रीति से नहीं हुआ।ईसा की दूसरी सदीं में भारत में आयुर्वेद के दो महान् विद्वान् उत्पन्न हुए – (सुश्रुत और चरक) अपनी सुश्रुतसंहिता में सुश्रुत ने मोतियाबिन्दु, पथरी तथा कई रोगों का शल्योपचार बताया है। उन्होंने शल्य किया के १२१ उपकरणों का उल्लेख किया है। रोगों के इलाज के लिए उन्होंने आहार और सफाई पर जोर

दिया है। चरक की चरकसंहिता भारतीय चिकित्साशास्त्र का विश्वकोश है। इसमें ज्वर, कुष्ठ, मिर्गी और यक्ष्मा के अनेक भेदो प्रभेदों का वर्णन है। इनकी पुस्तक में भारी संख्या में उन पेड़-पौधों का वर्णन है जिनका प्रयोग दवा के रूप में होता है।

भूगोल – नदियों, पर्वत एवं भूमि क्षेत्र- भारत से बाहर की दुनिया का भौगोलिक ज्ञान अत्यल्प था, परन्तु देश के विभिन्न प्रदेशों की नदियों, पर्वतों और तीर्थ स्थानों का विशद् वर्णन रामायण, महाभारत और पुराणों में मिलता है। यद्यपि भारत के लोग चीन और पश्चिमी देशों के बारे में कुछ-कुछ जानते थे, पर उन्हें इस बात का कोई विशेष ज्ञान नहीं था कि ये देश कहाँ और भारत से कितनी दूर हैं। पूर्वकाल में प्राचीन भारतीयों को समुद्रयात्रा का कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने जहाज बनाने की कला में कुछ योगदान दिया परन्तु चूँकि बड़ी-बड़ी राजनीतिक शक्तियों के केन्द्र स्थल समुद्रतट से बहुत दूर थे और समुद्र की ओर से कोई खतरा नहीं था, इसलिए प्राचीन भारत के राजाओं ने नौका परिवहन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, जिसका प्रभाव कालान्तर में भारत पर विपरीत पड़ा।

कला और साहित्य का वर्णन- प्राचीन भारत के राजमिस्त्री और शिल्पी सुन्दर सुन्दर कलाकृतियाँ बनाते थे। अशोक द्वारा बनवाए गए अखण्ड प्रस्तर के स्तम्भ अपनी चमकदार पालिश के लिए प्रसिद्ध हैं। यह अभी तक रहस्य बना हुआ है कि शिल्पकारों ने स्तम्भों के शीर्ष पर पशुओं विशेषकर सिंहों की मूर्तियाँ कैसे अंकित की। सिंह की मूर्ति वाले स्तम्भ शीर्ष को भारत सरकार ने राष्ट्रीय चिह्न स्वीकार किया है। अजन्ता के गुहा मन्दिरों और विख्यात चित्रों का उल्लेख यहाँ गौरव के साथ किया जा सकता है, जो ईसवी सन् के आरम्भ काल के है। एक प्रकार से अजंता एशियाई कला का जन्म स्थान है। वहाँ ईसा-पूर्व दूसरी और ईसाका सातवीं सदियों के बीच अनेक गुहा मन्दिर बने जिनकी संख्या ३० तक है। अफगानिस्तान और मध्यएशिया के पडोसी भाग में भारतीय कला के प्रसार का केन्द्र बिन्दु गंधार था। भारतीय कला और यूनानी कला दोनों के तत्त्वों के सम्मिश्रण में एक नई कला शैली का जन्म हुआ जो गांधार शैली के नाम से प्रसिद्ध है। बुद्ध की पहली प्रतिमा इसी शैली में बनी है। शिक्षा के क्षेत्र में नालन्दा का महाविहार उल्लेखनीय है। वहाँ न केवल भारत के विभिन्न भागों से बल्कि तिब्बत और चीन से भी बौद्ध छात्र पढ़ने के लिए आते थे। इसमें प्रवेश केवल उन्हीं का होता था जो पण्डित द्वारा ली गई परीक्षा में उत्तीर्ण होते थे। नालन्दा का महाविहार आवासीय सह-शिक्षण संस्थान का सबसे प्राचीन उदाहरण है, जहाँ विद्या, दर्शन और ध्यान के प्रति समर्पित हजारों भिक्षु रहते थे।

उपसंहार –सिन्धु सभ्यता की खोज के पूर्व तक अधिकांश विद्वानों की यह मान्यता थी कि भारतीय संस्कृति मूल रूप से आर्य भाषा-भाषियों की ऋणी है, किन्तु सन १९२१ ई.वी. में सिन्धु सभ्यता के प्रकाश में आने के फलस्वरूप विद्वानों ने अपनी इस मान्यता में उल्लेखनीय संशोधन किये हैं। सैंधव सभ्यता यद्यपि अब अतीत की कहानी बन गई है तथापि प्रायः यह स्वीकार किया जाता है कि कालान्तर में विकसित भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर सिन्धु सभ्यता का गम्भीर प्रभाव पडा है।

सन्दर्भसूची

1. सिन्हा, डॉ. नागेन्द्र-"मध्यभारत का इतिहास", तृप्ति प्रकाशन, इन्दौर मध्यप्रदेश, संस्करण 1986
2. शर्मा, दीपककुमार-"भारत का इतिहास", अलंकारप्रकाशनम्, लखनऊ, संस्करणम् 1981
3. भारत का इतिहास, 1989 पेज नं 23 से 42
4. एन.सी.ई.आर.टी. राजनीतिक सिद्धान्त – 2006 सामाजिक न्याय पेज नं. 52 से 63
5. आर्य सम्राज्य का इतिहास – 2006 पेज नं. 81 से 84
6. भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिकता पेज नं. 37-84
7. सामाजिक विज्ञान उत्तरप्रदेश बोर्ड – 2007 पेज नं. 25 से 35
8. 'Malley.L.S-" History of Bengal Bihar Grantha Academy Patna, Ed-1962
9. Ptolemy-" Ancient India", Vishkkasm Publication Calcutta First Ed-1971

असिस्टेन्ट प्रोफेसर ,क.जे.सो.संस्कृत विद्यापीठ,मुम्बई।

वास्तुशास्त्र के अनुसार वृक्ष विचार

✍ भरत गर्ग

वास्तु विषय का आशय मुख्य रुप से आवास या आश्रय स्थान से लिया जाता है। मानव तो क्या पशु-पक्षियों में भी आवास की अभिलाषा रही हैं। भारतीय वास्तु शास्त्र केवल एक प्राणी, एक राज्य, एक देश के लिए ही नहीं रचा गया था अपितु इस भूमण्डल का भी चिन्तन इसमें किया गया था। इसमें भूमि और भवन ही नहीं समाया हुआ है, अपितु इस पृथ्वी पर कोई भी निर्माण या वृक्षादि रोपण, साद सज्जा एवं योजना वास्तु है '**वास्तु**' शब्द वस्तु शब्द से निकला है। अतः हर प्रकार की वस्तु वास्तु में समाहित है।[1] भारत में वैदिक काल से पेड़-पौधों के प्रति रूचि रही है। प्रायः सभी वास्तु ग्रन्थों में वृक्षों के बारे में वर्णन मिलता है। बृहत्संहिता में वृक्षायुर्वेद के नाम से विस्तारपूर्वक एक अध्याय दिया गया है। अग्निपुराण में वृक्षभेषज विद्या, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में गुल्मवृक्षायुर्वेद आदि के नाम से देखने को मिलते है। अथर्ववेद की इस ऋचा से सभी प्रकार के पौधों के उगने के स्थान के अनुसार तीन भेद कहे गये है। **यो रोहन्त्यांगिरसाः पर्वतेषु समेषु च ।ता नः पचस्वतीः शिवां औषधीः सन्तु शं ह्रदे ।।**[2] तीन प्रकार के पौधे होते है – 1) जो पर्वतों में उगते हैं, 2) जो जमीन पर उगते हैं। 3) जो जल में उगते है। वास्तुशास्त्र के अनुसार बडे वृक्षों को घर के अन्दर नहीं लगाना चाहिए। इन्हें घर के बाहर लगाना चाहिए। **यदि स्वर्णमयं वृक्षं गृहमध्ये न रोपयेता । अजिरे तुलसीवृक्षं रोपयेदधनाशनम् ।।**[3]वास्तु प्रबोध ग्रन्थानुसार गृह के मध्य भाग में किसी भी प्रकार का कोई वृक्ष या पौधा नहीं लगाना चाहिए। गृह के मध्य भाग (ब्रह्म स्थान या आँगन) में तुलसी को छोड़कर अन्य कोई पौधा न लगाएँ चाहे वह स्वर्ण का पेड़ क्यों न हो। क्योंकि पौधों का हमारे समीप या दूर होने का हम पर शुभाशुभ प्रभाव पड़ता है इसलिए सर्वप्रथम हम उन पौधों के बारे में जानें जिन्हें घर पर नहीं लगाना चाहिए।

1.गृह के समीप त्याज्य वृक्ष -राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् ग्रन्थानुसार गृह के समीप कोन से वृक्ष नही उगाने है किन किन वृक्षों का त्याग करना है। **वृक्षाः क्षीरसकष्टकाश्च फलिनस्त्याज्या गृहाद्दूरतः शस्ते चम्पकपाटले च कदली जाती तथा केतकी । यामादूर्ध्वमशेषवृक्षसुरजाच्छाया न शस्ता गृहे पार्श्वे कस्य हरेरवीशपुरतो जैनानुचण्ड्याः कचित् ।।**[4] घर के पास दूध वाले वृक्ष, कांटे तथा अधिक फल वाले वृक्षों को नहीं लगाना चाहिए, लेकिन चंपा, पाटल, केल, जई तथा केतकी का रोपण करना चाहिए। जिस घर पर दिन के दूसरे तथा तीसरे प्रहर में वृक्ष या मंदिर की छाया पडती हो, वह हितकारी नहीं है; लेकिन पहले व चौथे प्रहर में पड़ने वाली छाया दोष रहित है। ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और महादेव के मंदिर के सामने तथा जैन मंदिर के सामने भवन निर्माण नही करना चाहिए। दुग्ध वाले वृक्ष धन नाश, काँटे वाले वृक्ष शत्रुभय, फलवाले सन्ततिनाश कारक होते है। सुवर्ण वर्ण वाले फूल भी घर के समीप शुभ नहीं होते है।[5]

2.गृह के समीप शुभ वृक्ष - द्राक्षा (मुनक्का-अंगुर) की बेल का मंडप, चन्दन वृक्ष, पिप्पली की बेल, अनार का वृक्ष लगाना शुभ होता है। गृह के उत्तर में कैथ पूर्व में बरगद, दक्षिण में गुलाब और पश्चिम में पीपल शुभ होते है।बृहत्संहिता के अनुसार पाकड़ का वृक्ष दक्षिण में, वट का वृक्ष पश्चिम में, गुलर उत्तर में और पीपल पूर्व दिश में अशुभ होता है। पाकड़ उत्तर में, वट पूर्व में, गुलर दक्षिण में और पीपल पश्चिम दिशा में शुभ होता है। **याभ्यादिष्वशुभफला जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते । उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः ।।**[6]

3.अशुभ वृक्ष एवं दोष – बबुल, खेर आदि कांटे के वृक्ष घर के पास रहने से शत्रुभय होता है। दूध वाला वृक्ष घर के समीप होने से धन नाश होता है। फल वृक्ष गृह के समीप होने से सन्तान नाश होता है। इतना ही नही यदी इनकी लकड़ी का भी घर में प्रयोग किया जाता है तो भी अशुभ होता है। यदि काँटे वाले वृक्षों के बीच में पुन्नाग, अशोक, नीम, मौलसिरी, कटहर, रुमी, काल ये वृक्ष लगा दिये जाय तो उपर्युक्त दोष नही होता है।[7]**वर्जयेत् पूर्वतोऽश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणतस्तथा ।**

न्यग्रोधं पश्चिमे भागे उत्तरे चाप्युदुम्बरम् ।। अश्वत्थे तु भयं ब्रूयात प्लक्षे ब्रूयात्पराभवम् । न्यग्रोधे राजतः पीड़ा नैत्रायममुदुम्बरे ।।वटः पुरस्ताध्दन्यः स्याद्दक्षिणे चाप्युदुम्बरम् ।अश्वत्थः पश्चिमे भागे प्लक्षस्तूत्तरतो भवेत् ।।[8]

4.गृह निर्माण में ग्राह्य एवं अशुभ वृक्ष – गृह कार्य के निमित्त जिन जिन वृक्षों का काष्ठ शुभ और ग्राह्य होता है वे शाक, शिरीष, सरल, शमी, श्रीपर्णी, शिंशुप, सर्ज, सप्तपर्णी, शाल्मली, पिसित, पनस, पिण्डी, सुपारी, पतङ्ग, पद्मक, तिन्दुक, तिलक, तिमिर, बिम्ब, नीम, कदम्ब, जामुन तम्बक, बाँस, खादिर, कदर या कगर, भूर्ज, चंदन, रक्तचंदन, अशोक, ताल, हिताल, साल, कालास,कटुफल, खीरनी, रोहिणी, रोध्र, हारिद्रक, देवद्रुम, राजादन, नारियल, खर्जूर, महुआ, अर्जुन आदि।[9] गृह में एक, दो और तीन प्रजातियों के पेड़ो का काष्ठ काम में नहीं लिया जाना चाहिए। यह अप्रशस्त होता है। एक ही प्रकार के पेड़ो में श्रीपर्णी शिंशिपा, सरल, अर्जुन, पनस, पद्मक, तिदुंक तिनिस ग्राह्य किन्तु अन्य संयुक्त नही होने चाहिए। कम्पित होकर गिरा हुआ, मार्ग में उगा हुआ, चैत्य या शमशान में उगा हुआ देवालय के पेड़ या अन्य पेड़ श्रेष्ठ नहीं होते है। इसी प्रकार काँटे वाले पेड़, तालाब के निकट उगने वाले पेड़, नदियों के सङ्गम स्थान पर उगने वाले, जिन पर पक्षियों के घोंसले हो, दूध वाले पेड़, आधे सूखे हुए और कोटर वाले वृक्ष दोषकारक माने जाते है।

5.अन्य शुभाशुभ -

1) वृक्षों को चार दीवारी के अन्दर नहीं लगाएँ। फार्म हाउस या बहुत बड़े भूखण्डों में इन्हे लगाया जा सकता है।
2) आग्नेय कोण या नैऋत्य कोण पर वृक्षों का रोपण शुभ नहीं है।
3) मुख्यव्दार के सामने भी कोई वृक्ष या पौधा न लगाएँ।
4) रेगिस्तान में उगने वाले पौधे घर में नहीं लगाने चाहिए।
5) बांस का पौधा घर की सीमा में नहीं होना चाहिए।
6) घर के बाहर पीपल का वृक्ष पूर्व में तथा बरगद का पश्चिम दिशा में होना अशुभ माना गया है।
7) तुलसी व चमेली के पौधे किसी भी दिशा में लगाया जा सकता है ईशान कोण या ब्रह्मस्थान में तुलसी का पौधा अति शुभ है।
8) रबर प्लान्ट, कैक्टस, बोनसाई पौधे घर में नही लगाने चाहिए।
9) पूर्व और उत्तर दिशा में छोटे पौधे लगाने चाहिए, तथा दक्षिण और पश्चिम दिशा में बड़े पौधे या वृक्ष लगाने चाहिए।[10]

6.उपसंहार –गृहोपयोगी शुभाशुभ वृक्ष के सम्बन्ध में प्रभूत विचार किया गया है। तथा दोष पूर्ण और दोष रहित पेड़ों का वर्णन भी किया है एवं दूध वाले, कांटेदार तथा फल वाले वृक्षों को गृहोपयोगी नहीं माना है, किंतु पुष्पवाली, लतायुक्त पौधों को स्वीकार्य बताया है। पुष्पो में स्वर्णाभ वाले पुष्पीय पौधे गृह कार्यार्थ अनुचित माने है।

पाठ टिप्पणी

1.वास्तुसर्वस्व, शैलेन्द्र शर्मा पृ.सं.16
2.अथर्ववेद 8 / 7 / 17
3.वास्तुप्रबोध
4.राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् अ.1, श्लो. 28, पृ.सं. 186
5.बृहद्वास्तुमाला, गृहप्रवेश प्रकरण, पृ.सं 113
6.बृहत्संहिता, वृक्षविचार
7.बृहद्वास्तुमाला, पृ.सं 114
8.गर्ग मत
9.क्षेत्रार्कसूनुनाथविरचितः वास्तुमञ्जरी पृ.सं. 79
10.वास्तुसर्वस्व, अध्याय – 41, पृ.सं. 192
11.राजवल्लभ 1, 28-30

प्राध्यापक ,क.जे.सोमैया विद्द्यापीठ,मुम्बई

Science of Philosophy

✍ Tello Deltige

Philosophy the systems of thought and reflection that were developed by the civilizations of the Indian subcontinent. They include both orthodox (*astika*) systems, namely, the Nyaya, Vaisheshika, Samkhya, Yoga, Purva-Mimamsa (or Mimamsa), andVedanta schools of philosophy, and unorthodox (*nastika*) systems, such as Buddhismand Jainism. Indian thought has been concerned with various philosophical problems, significant among which are the nature of the world (cosmology), the nature of reality (metaphysics), logic, the nature of knowledge (epistemology), ethics, and the philosophy of religion.

Significance of Indian philosophies in the history of philosophy

In relation to Western philosophical thought, Indian philosophy offers both surprising points of affinity and illuminating differences. The differences highlight certain fundamentally new questions that the Indian philosophers asked. The similarities reveal that, even when philosophers in India and the West were grappling with the same problems and sometimes even suggesting similar theories, Indian thinkers were advancing novel formulations and argumentations. Problems that the Indian philosophers raised for consideration, but that their Western counterparts never did, include such matters as the origin (*utpatti*) and apprehension (*jnapti*) of truth(*pramanya*). Problems that the Indian philosophers for the most part ignored but that helped shape Western philosophy include the question of whether knowledge arises from experience or from reason and distinctions such as that between analytic and synthetic judgments or between contingent and necessary truths. Indian thought, therefore, provides the historian of Western philosophy with a point of view that may supplement that gained from Western thought

General characteristics of Indian philosophy

COMMON CONCERNS

The various Indian philosophies contain such a diversity of views, theories, and systems that it is almost impossible to single out characteristics that are common to all of them. Acceptance of the authority of the Vedas characterizes all the orthodox (*astika*) systems—but not the unorthodox (*nastika*) systems, such as Charvaka(radical materialism), Buddhism, and Jainism. Moreover, even when philosophers professed allegiance to the Vedas, their allegiance did little to fetter the freedom of their speculative ventures.

In most Indian philosophical systems, the acceptance of the ideal of *moksha*, like allegiance to the authority of the scriptures, was only remotely connected with the systematic doctrines that were being propounded. Many epistemological, logical, and even metaphysical doctrines were debated and decided on purely rational grounds that did not directly bear upon the ideal of *moksha*. Only the Vedanta ("end of the Vedas") philosophy and the Samkhya (a system that accepts a real matter and a plurality of the individual souls) philosophy may be said to have a close relationship to the ideal of *moksha*. The logical systems—Nyaya, Vaisheshika, and Purva-Mimamsa—are only very remotely related. Also, both the philosophies and other scientific treatises, including even the *Kama-sutra* ("Aphorisms on Love") and the *Artha-shastra* ("The Science of Material Gain"), recognized the same ideal and professed their efficacy for achieving it.

Roles of sacred texts, mythology, and theism

The role of the sacred texts in the growth of Indian philosophy is different in each of the different systems. In those systems that may be called *adhyatmavidya*, or sciences of spirituality, the sacred texts play a much greater role than they do in the logical systems (*anvikshikividya*). In the case of the former, Shankara, a leading Advaita Vedanta philosopher (*c.* 788–820 CE), perhaps best laid down the principles: reasoning should be allowed freedom only as long as it does not conflict with the scriptures. In matters regarding supersensible reality, reasoning left to itself cannot deliver certainty, for, according to Shankara, every thesis established by reasoning may be countered by an opposite thesis supported by equally strong, if not stronger, reasoning. The sacred scriptures, embodying as they do the results of intuitive experiences of seers, therefore, should be accepted as authoritative, and reasoning should be made subordinate to them.

Kapila, the legendary founder of the Samkhya school, supposedly flourished during the 7th century BCE. Proto-Jain ideas were already in existence when Mahavira (flourished 6th century BCE), the founder of Jainism, initiated his reform. Gautama the Buddha (flourished *c.* 6th–4th centuries BCE) apparently was familiar with all these intellectual ideas and was as dissatisfied with them as with the Vedic orthodoxy. He sought to forge a new path—though not new in all respects—that was to assure blessedness to man. Orthodoxy, however, sought to preserve itself in a vast *Kalpa-sutra* (ritual) literature—with three parts: the *Shrauta-sutra*, based on *shruti* (revelation); the *Grihya-sutra*, based on *smriti* (tradition); and the *Dharma-sutra*, pertaining to rules of religious law—whereas the philosophers tried to codify their doctrines in systematic form, leading to the rise of the philosophical sutras. Though

the writing of the sutras continued over a long period, the sutras of most of the various *darshana*s probably were completed between the 6th and 3rd centuries BCE. Two of the sutras appear to have been composed in the pre-Mauryan period but after the rise of Buddhism; these works are the *Mimamsa-sutra*s of Jaimini and the *Vedanta-sutra*s of Badarayana (*c.* 500–200BCE).The Mauryan period brought, for the first time, a strong centralized state. The Greeks had been ousted, and a new self-confidence characterized the beginning of the period. This seems to have been the period in which the epics *Mahabharata* and*Ramayana* were initiated, though their composition went on through several centuries before they took the forms they now have. Manu, a legendary lawgiver, codified the *Dharma-shastra*; Kautilya, a minister of King Chandragupta Maurya, systematized the science of political economy (*Artha-shastra*); and Patanjali, an ancient author or authors, composed the *Yoga-sutra*s. Brahmanism tried to adjust itself to the new communities and cultures that were admitted into its fold: new gods—or rather, old Vedic gods that had been rejuvenated—were worshipped; the Hindu trinity (Trimurti) of Brahma (the creator), Vishnu (the preserver), and Shiva (the destroyer) came into being; and the Pashupata (Shaivite), Bhagavata (Vaishnavite), and Tantra (esoteric meditative) systems were initiated. The *Bhagavadgita*—the most famous work of this period—symbolized the spirit of the creative synthesis of the age. A new ideal of karma as opposed to the more ancient one of renunciation was emphasized. Orthodox notions were reinterpreted and given a new symbolic meaning, as, for example, the *Gita* does with the notion of *yajna* ("sacrifice"). Already in the pre-Christian era, Buddhism had split up into several major sects, and the foundations for the rise of Mahayana ("Greater Vehicle") Buddhism had been laid.

REFRENCES

1.indian heritage..9/1-2

2. 5. Sarton, A History of Science,_quoted in 'Materialism in the Vedas', p. 130.

3 Sircar, Hindi; Achievement in txact Science, quoted in 'Materialism in the Vedas', p. 131.

4. Vannucci, M., Ecological Readings in the Veda, D. K. Printworld(P) Ltd., New Delhi, 1994, p. 89.

5. indian culrter

6. Rgveda, X, 192 3 and Yai;arveda, 40.8.

7.J. Ghosh, E. N., "Studies in Rgvedic deities—astronomical and meteorological", JASB 28, 1932.

8.'jid., p. 123.

9 Rice, L., Amarakosha of Amarasiniha, (in Kannada), Mysore, 1970, p. 12-113

Dept of Philosophy.University of Heidelberg
tillodeltige@gmail.com

ROLE OF EDUCATION IN THE DEVELOPMENT OF ENVIRONMENT WITH SPECIAL REFERENCE TO SANSKRIT LITERATURE.

✍**Nrityendu Bikash Das**

The term 'Environment' is derived from the French word 'Environ' which means everything that surrounds us. Environment is something with which people are very familiar with. Broadly speaking Environment means the entire surrounding viz. the land, water and the air. The environment is defined as that physical and biological system in which man and other organisms live.

The term Education is derived from the Latin root 'Educare' which means to bring up. Education is the basic tool for the all-round development of a person which indirectly achieves development of a nation too. Education is the process by which people understand what is right and what is wrong. Thus education plays a vital role in the development process of mankind and ultimately of environment. Environment covers all factors that have acted on the individual since he began life. Broadly speaking there are two types of environment i.e. Natural Environment (related to nature) and Social Environment (related to society). The society is undergoing a rapid change in all sectors of life. It is considered that the people who are unlettered or uneducated need to be educated and trained, so that they can use their resources for proper developmental process. Environmental Educational is a process with the aim of determining the necessary skills and approaches for understanding the connection between man, his culture and the environment. It is a way of reaching environmental protection targets. The ultimate aim of environmental education is to enable citizens in becoming environmentally knowledgeable. The very words 'Environment' and 'Education' raised the questions why' when and for what purpose they are so closely related to each other. To this point the answer may be At present days, the growth and rapid economic development is destroying our environment due to which ecosystem is in danger. The land is severely eroded; the air is polluted and all these are threat to human health. Infact man himself is the sole agent of environmental degradation. So it is very important to study man's relationship with various elements surrounding him. As imbalance environment is like a curse to human life. The world environment is now in a danger zone due to various factors such as rapid increase in population, poverty, industries and cutting of trees etc. Education related to environment is essential for the young generation as well as adults i.e. environmental education is such an important issue which should be provided for all ages, at all levels. In every schools and colleges the subject should be linked with the practical situations. And this can be succeeded only by the teachers, who are dealing with it. Is now also believed that what teachers tell to students, students being motivated act accordingly. Education and educational institutions can play a good role in the development of environment because through education only people right from childhood know what is environment and why it should be protected. Moreover, if any person is not aware of environment then the person who is aware of it, can motivate for the sense of responsibility towards environment. Pollution is another unfavourable alteration of our environment which occurs mainly because of the activities of human being. There are many types of environmental pollution and this can be classified as air pollution, water pollution, land pollution, radioactive pollution, thermal pollutions and noise pollution etc. in this respect also if the people are properly educated then they can understand the pollution problem and there by pollution of the environment can be minimised to some extent. Environment is the future of present day generations. And they must be encouraged to think positively about it. For the development of environment the organizations, books, and the media also play an important role. If the environment is not used properly, health and development of people will suffer. And if the environment is improved, both economies and people will become healthier.

The contribution of Sanskrit literature towards the protection of environment is also tremendous. Many poets and dramatists of different literature also have given emphasis on the nature and environment

in their writings. In Sanskrit literature great poets and dramatists like Kalidasa, Bhavabhuti and other have given beautiful descriptions of nature in such a way that readers are notivated and influenced by the importance of natural environment. Veda, the very first book of mankind, supports a good relationship between man and nature which is as holy as mother and child. In the Rgveda also nature was the vital surce of inspiration for the vedic seers. The Vedic seers' emotions found expressions through the supeb poetry of the Rgveda. They sang melodious songs in praise of nature and bowed down before her. In Sanskya system also (the post-vedic philosophical school), nature has a prominent place.

In the vedic times rituals were performed to keep the environment pure and perfect. According to Shastras, plantation is a secred dharma and destruction of trees is a great sin. Trees should be planted whether it offer fruits or not. Even if does not offer fruits, at least give shade. The Siva Purana gives importance for plantation of trees by giving trees the status of sons. According to Sukla Yajurveda also, man is always indebted to nature as maximum requirements of man are fulfilled by the grace of nature god. In earlier days, men used to treat the force of nature as divine beings. Thus a sense of development about nature and environment arose in their minds. But in the modern age, man being selfishly started exploitation of natural phenomena in the name of development and modernization. If the attitude of the modern man continues to be the same, the survival of humanity itself will became a big question.Therefore, education plays a vital role in order to achieve environmental development. Moreover people should give up greed and learn to live in pace with nature by thinking that ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' (the whole world is a family), then all living being will be able to live happily and safely in this world.It is said that – ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिदुःखभाग्भवेत्।।''

BIBLIOGRAPHY

(i) Aktar, Rais, Environment and health (themes in medical geography, Ashish publishing house, New Delhi, 1991).2

(ii) Agrawal, S.P & Aggarwal, J.C., Environment protection, Education and development : a reference manual with detailed bibliography of source material, new concepts, New Delhi, 1996.

(iii) Basu, Saikat kumar & Banik, Sudip data, Education global issues and policies corporation new environment vol.II, A.P.H. publishing corporation, New Delhi, 2009

(iv) Chaubey, Braj Bihari, Treatment of nature in the Rgveda, Vedic Sahitya Sadan, Hoshiarpur, 1997.

(v) Datta, Debabrata Datta, History of Indaian Education, Bichitra Prakashani, Kolhata, 1997.

(vi) Goel, Aruna & Goel, S I., Human values and Education, Deep and Deep Publications Pvt. Ltd., New Delhi, 2005.

(vii) Grover, R.P., Education for All, The Associated Publishers, Ambala cantt., 1996.

(viii) Nanda, Sukanta. K, Environmental law, Central Law Publications, Allahabad, 2007.

(ix) Plamer, Joy & Neal, Philip, The hand book of Environmental Education, Rout ledge, London and Newyork, 1994.

(x) Sinha, B.R., Education and Development vol. I, Sarup and sons, New Delhi, 2003

(xi) Dictionary :(a) Mitra, Subal Chandra, Century Dictionary (English to Bengali to English), New Bengal Press, Kolkata, 1963.

(b)Roy, Bholanath, Bhargava's Pocket Dictionary (Hindi to English edition), Bhargava Book Depot, Varanasi, 2000.

(c) Internet Sources : Wikipediadictionary/Sanskrit-www.mediawiki.com

Research Scholar Deptt. of Sanskrit
Assam University, Silchar